रघुवंश

भाषान्तरकार

इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली

मूल्य
तीन रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड
दिल्ली

छात्रावस्था से ही मुझे कालिदास के काव्यों के पारायण का व्यसन रहा है। अब तक भी रिक्तसमय को काटने या मनोरंजन के लिये उपन्यास के स्थान पर मैं प्रायः कालिदास का कोई काव्य पढ़ा करता हूँ। जितना ही अधिक मैंने कवि-सम्राट् के काव्यों का अनुशीलन किया, उतना ही अधिक उनका सौन्दर्य और गौरव मेरे मन पर अङ्कित होता गया।

कई प्राचीन साहित्यालोचकों ने कालिदास के ग्रन्थों में सब से उत्कृष्ट अभिज्ञान शाकुन्तल को ठहराया है। शाकुन्तल में ललित शब्दों और कोमल भावनाओं का ऐसा अच्छा मिश्रण है कि उसकी उपमा मिलनी कठिन है। इस दृष्टि से उसका स्थान न केवल कालिदास के ग्रन्थों में या संस्कृत के वाङ्मय में, अपितु विश्व के साहित्य में ऊँचा माना जाय तो उचित ही है। परन्तु दो कारणों से मैंने रघुवंश को पहला स्थान दिया है। प्रथम कारण तो यह है कि वह महाकाव्य है। उसमें वर्णनीय विषयों और रसों की इतनी विविधता है कि कवि को अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का पूरा अवसर मिला है। दूसरा कारण यह है कि रघुवंश में हम कालिदास के काल की अवस्था तथा भावना का विशद तथा उज्ज्वल चित्र देखते हैं। यह ठीक है कि रघुवंश महाकाव्य में सम्राट् रघु और उसके वंशजों की कहानी चित्रित की गई है, परन्तु गम्भीर दृष्टि से पढ़नेवाला पाठक इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि उस चित्रावली की पृष्ठभूमि में महाकवि का समय विद्यमान है।

मैंने रघुवंश के श्लोकों का शब्दानुवाद नहीं किया। शब्दानुवाद से मैं कवि के आन्तरिक भाव को पाठकों तक नहीं पहुँचा सकता था। मैंने प्रयत्न किया है कि मैं कवि के आन्तरिक भावों को, सुबोध लोक-भाषा में प्रतिबिम्बित कर दूँ। फलतः यह रघुवंश के उन्नीस सर्गों के प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक श्लोक का भावानुवाद भी नहीं है। यह कहना अधिक संगत होगा कि यथासम्भव तथा यथोचित कवि के भाव, और कवि की कथनशैली की रक्षा करते हुए सम्राट् रघु के तेजस्वी चरित को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

समय और स्थान :

कालिदास के जन्मस्थान और जन्मकाल के सम्बन्ध में आज भी वैसा ही अनिश्चय बना हुआ है, जैसा आज से ५० वर्ष पूर्व था। प्राय: देश का प्रत्येक प्रान्त कालिदास की जन्मभूमि होने का दावा कर चुका है। काश्मीर, हिमाचलप्रदेश, मालवा, मगध, बंगाल तथा दक्षिण के पक्ष में प्रबल युक्तियों तथा प्रमाणों से सुसज्जित लेख लिखे गये हैं। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि प्रान्त-विशेष का समर्थन प्रायः उसी प्रान्त के निवासी विद्वानों ने किया है। यह उस व्यापक और गहरे प्रेम तथा आदरभाव का सूचक है, जो भारतवासी मात्र के हृदय में कालिदास के लिये विद्यमान है। वे उसे अपनाना चाहते हैं, उसका जन्मस्थान अपने प्रान्त में, यदि हो सके तो अपने गाँव में खोजना चाहते हैं। यदि महाकवि ने अपने किसी ग्रन्थ में जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई संकेत दिया होता तो विवाद की कुछ बात ही न रहती। इसके अभाव में प्रत्येक भारतवासी की यह अभि-लाषा स्वाभाविक ही है कि वह कालिदास को स्वदेशी सिद्ध करे। मैं स्थान सम्बन्धी तर्कवितर्क में न पड़कर विद्वानों की सम्मतियों के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचना अधिक सुन्दर और सार्थक समझता हूँ कि कालिदास का जन्मस्थान सम्पूर्ण भारतवर्ष था—उसे

जन्म देने का श्रेय किसी एक प्रान्त को न देकर, समूचे देश को देना चाहिये ।

अन्वेषकों ने कालिदास के जन्मस्थान का निर्णय करने के लिये जिन उपायों का सहारा लिया है उनमें से एक यह भी है कि कालिदास की रचनाओं से कवि के प्रान्तसम्बन्धी परिचय तथा प्रेम की परख की जाय। अन्वेषकों ने मान लिया है कि रचनाओं की छानबीन से जिस प्रदेश के साथ कवि का गहरा परिचय तथा प्रेम भासित होता हो कवि का जन्म उसी प्रदेश में हुआ होगा। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि इस उपाय के सूत्र को पकड़कर जब अन्वेषक लोग आगे बढ़े तो उनमें से प्रायः प्रत्येक अपने जन्मप्रदेश में पहुँच गया। मैं तो इसका मूल कारण यह समझता हूँ कि कालिदास का देशप्रेम और देशपरिचय असाधारण रूप से व्यापक और गहरा था। देशभ्रमण का कवि को जो अवसर मिला, उसने अपनी निरीक्षण-शक्ति और अद्भुत प्रतिभा के बल से उससे पूरा लाभ उठाया। सम्पूर्ण भारतखण्ड के भिन्न-भिन्न प्रदेशों और उनकी विशेषताओं से जितना परिचय कालिदास का था, उतना शायद ही किसी अन्य कवि का हो। हिमालय की चोटियों, दक्षिण की नदियों और पूर्व तथा पश्चिम के वन-उपवनों का बहुत ही वास्तविक और विशेषतापूर्ण वर्णन महाकवि के काव्यों तथा नाटकों में मिलता है। उसे पढ़कर प्रतीत होता है कि कवि ने चिरकाल तक बहुत समीप से उन स्थानों को देखा है। सामान्य व्यक्ति चिर-निवास के बिना उतना निरीक्षण नहीं कर सकता। कुमारसम्भव के प्रारम्भ में कालिदास ने हिमालय का मानो नखशिख वर्णन कर दिया है। अगर रघुवंश में रघु की दिग्विजय यात्रा का वर्णन पढ़िये तो आप अनुभव करेंगे कि कवि को भारत के कोने-कोने की भौगोलिक और मानवीय विशेषताओं का पुष्कल परिचय है। मेघदूत का अनुशीलन [illegible] देश के उत्तर और दक्षिण के मुख्य दो पर्वतों को आपस में मिलानेवाले मेखला का मार्मिक वर्णन पायेंगे। कालिदास

के इस व्यापक और गहरे परिचय का ही परिणाम है कि भारत के प्रत्येक प्रान्त का निवासी कवि के ग्रन्थों में अपने प्रान्त के इतने चिह्न पा लेता है कि उसे कालिदास के समप्रान्तीय होने का विश्वास हो जाता है। यदि केवल किसी एक अंग पर दृष्टि न डालकर कवि के समस्त काव्यों पर पक्षपातहीन दृष्टि डाली जाय तो यही परिणाम निकलेगा कि कालिदास भारत का निवासी था। उसका जन्म कहाँ हुआ था, इस प्रश्न का उत्तर तो समयान्तर में कोई पुरातत्ववेत्ता दे देंगे, मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि महाकवि कालिदास भारतवर्ष का निवासी था, और यदि हम कालिदास के समय के भारतवर्ष को जानना चाहते हैं, तो उसका सर्वोत्कृष्ट चित्र कवि के काव्यों में विद्यमान है।

दूसरा प्रश्न जन्मकाल का है। जन्मकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों के अनेक पक्ष हैं। विक्रम संवत् के संस्थापक सम्राट् विक्रमादित्य से लेकर छठी शताब्दी के किसी विक्रमादित्य तक के समय में महाकवि की सत्ता को सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये हैं। इस विषय में, कालिदास के ग्रन्थों में अथवा अन्यत्र कोई सीधा प्रमाण नहीं मिलता। ख्याति के अनुसार कालिदास सम्राट् विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से अन्यतम थे। यह ख्याति संस्कृत साहित्य में सत्य करके मानी जाती रही है। स्वाभाविक तो यह था कि जब तक पुष्ट प्रमाणों से उस ख्याति का खण्डन न हो जाता, तब तक उसे ही स्वीकार किया जाता। परन्तु पश्चिम के समालोचकों ने संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य की सत्ता पर ही आशंका उठा दी। बस फिर क्या था, मानसिक पराधीनता काल के भारतीय विद्वान् एक दम विक्रमादित्य को केवल भूत-प्रेतों जैसा कल्पित व्यक्ति मानकर ताम्रपत्रों और शिलालेखों में से किसी अन्य विक्रमादित्य को ढूँढ निकालने का प्रयत्न करने लगे। कई विक्रमादित्य खोदकर निकाले गये, परन्तु यह बतलाने वाला कोई शिलालेख अब तक भी नहीं मिला, कि उनमें से किस के समय में

महाकवि ने कविता की। ऐसी दशा में, मैं तो यही उचित समझता हूँ कि महाकवि कालिदास को विक्रमी संवत् के संस्थापक सम्राट् विक्रमादित्य का समकालीन ही माना जाय। इस मन्तव्य के पक्ष में जनश्रुति के अतिरिक्त साहित्य के पोषक प्रमाण भी विद्यमान हैं। केवल काल्पनिक युक्तियों के प्रहार से २००० वर्ष पुरानी ख्याति का दुर्ग नहीं तोड़ा जा सकता। यदि हम एक बार इस मार्ग पर चल पड़े, तो हमें अपने सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास से हाथ धो देना पड़ेगा। हमारे मनु और मान्धाता, हमारे राम और कृष्ण, और हमारे वाल्मीकि और व्यास पोषक शिलालेखों और ताम्रपत्रों के अभाव के कारण अविश्वास की आँधी से उड़ जाएँगे। इस कारण, अन्य किसी पुष्ट कल्पना के अभाव में, मैंने यही स्वीकार कर लिया है कि अब से २००६ वर्ष पूर्व, विक्रमादित्य नाम का एक प्रतापी सम्राट् भारत में राज्य करता था। उसने विदेशी आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करके स्मारक रूप में विक्रमी संवत की स्थापना की थी। महाकवि कालिदास उसी की सभा का एक रत्न था। जैसे उस आदि विक्रमादित्य के अनुकरण में अनेक भारतीय विजेताओं ने अपने नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि जोड़कर अपना मान बढ़ाया, उसी प्रकार अनेक कवियों ने भी अपने को कालिदास नाम से विशेषित करके---

"एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ?"

शृंगार रस और मधुर उक्तियों में एक कालिदास का जीतना ही कठिन है, फिर जब तीन कालिदास हों तो उनसे कौन पार पा सकता है ?

इस प्रकार की उक्तियों को जन्म दिया।

कालिदास के समय का भारत :

जब तक अत्यन्त पुष्टप्रमाणों से कोई दूसरा मत सिद्ध नहीं हो

जाता, तब तक इसी प्राचीन मत को प्रामाणिक मानना चाहिये कि रघुवंश आदि काव्यों और अभिज्ञान शाकुन्तल आदि नाटकों के निर्माता महाकवि कालिदास ने विक्रमी संवत् के संस्थापक महाराज विक्रमादित्य के राज्यकाल में अपनी अमरकृतियों की रचना की। यदि कालिदास ने अन्य अनेक उत्तरकालीन कवियों की भांति थोड़ी-सी भी आत्म-परिचय-सम्बन्धी बातें कह दी होतीं, तो आज कुछ महानुभावों को एक निश्चित विषय पर ऐसा संशयात्मा होने का अवसर न मिलता। परन्तु एक सन्तोष की बात भी है। महाकवि के काव्यों में कवि के समय का सीधा निर्देश न होते हुए भी, वह समय कैसा था, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। कालिदास के ग्रन्थों को पढ़िये तो आप उस समय के भावों की झलक ज्ञानचक्षुओं से देख सकते हैं। आप रघुवंश से उस समय की राजनीतिक भावनाओं, कुमारसम्भव से धार्मिक विचारों और मेघदूत से सामाजिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों का एक स्पष्ट चित्र खींच सकते हैं। तीनों नाटक मुख्यरूप से उस काल के राजाओं, राजपरिवारों और राजमहलों की अवस्थाओं का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त प्रसंगवश थोड़ा-बहुत जनता के जीवन को भी चित्रित करते हैं। अनेक प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों ने कालिदास के ग्रन्थों की सहायता से उस समय के समाज का पूर्णचित्र खींचने का यत्न किया है। इस सारभूत प्रस्तावना में उसका दिग्दर्शन कराने का भी स्थान नहीं है। यहाँ तो मैं थोड़े से शब्दों में उस चित्र की केवल परिधि-रेखाओं को ही खींच सकता हूँ, और वह भी इस रूप में कि उन्हें पढ़ने से मेरे मन पर विक्रम के समय की कैसी रूपरेखा खिची है।

वह समय अत्यन्त समृद्धिशाली था। भारत के शासकों का आस-पास के देशों पर आतंक था। देश के अन्दर शक्ति और विभूति का दौर-दौरा था। प्रजा संतुष्ट थी और राजभक्त थी। चोर और दस्यु भय खाते थे, और साधारण नागरिक सुख से अपना जीवन व्यतीत करते

थे। नगरों में विविध प्रकार की कलायें विकसित होती थीं और ग्रामों के निवासी अन्न उपजाकर देश को जीवन-दान देते थे। कर रूप में केवल भूमि का षष्ठांश लिया जाता था, जिसका अधिकांश प्रजा पर ही व्यय कर दिया जाता था। शासकवर्ग अपने को प्रजा का रक्षक और सेवक मानते थे, और अत्याचार करने से भय खाते थे।

(उस समय देश में भारतीय धर्म अपने पौराणिक रूप में प्रचलित था। बौद्धधर्म क्षीण हो गया था, जैनधर्म भी परिमित क्षेत्र में ही जीवित था। प्राचीन आर्यधर्म पौराणिक कलेवर में लोकसम्मत था। प्रतीत होता है कि मुख्यता भगवान् के शङ्कररूप को दी जाती थी।

(साहित्य और कला की दृष्टि से वह समय बहुत उन्नत था। उसे भारतीय साहित्य का स्वर्णीय युग कह सकते हैं। उस समय के साहित्योद्यान का सबसे उज्ज्वल और चमत्कारी पुष्प तो स्वयं कालिदास ही था, परन्तु इतिहास बतलाता है कि कालिदास जैसा पुष्प साहित्योद्यान में कभी अकेला नहीं खिलता। वह पुष्पों और कुंजों से घिरा रहता है। भारत की ऐतिहासिक परम्परा भी हमें यही बतलाती है कि वह समय कवियों, विद्वानों और कलाकारों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध था। संस्कारपूत, परिष्कृत और साधुभाषा का आदर किया जाता था। राजा से लेकर रंक तक साक्षर और विद्याप्रेमी होते थे। संस्कृत के नाटकों का बहुत प्रचार था। नाट्यकला और चित्रकला सार्वजनिक रूप से प्रचलित थीं। स्त्रियों को कला की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। 'प्रेक्षागृह' अर्थात् नाटक-घर को नगरी का आवश्यक अङ्ग माना जाता था।)

कालिदास के काव्यों में चित्रकला के निर्देश इतनी बहुतायत से मिलते हैं कि उनसे जहां एक ओर कालिदास के कलाप्रेम का परिचय मिलता है वहां उस समय का कलासम्बन्धी गौरव भी प्रकट होता है। दृश्यों, व्यक्तियों और पशु-पक्षियों के चित्रों की चर्चा स्थान-स्थान पर आई है। चित्रकला में ऐसे प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण को सबसे अधिक

कठिन और महत्वपूर्ण समझा जाता है जिसमें विस्तृत भूमि भाग पर पर्वत, आकाश, मनुष्य और पशु-पक्षियों पर प्रकाश और अन्धकार के सूक्ष्म प्रभावों को दिखाया गया हो। कालिदास के काव्यों से प्रमाणित होता है कि कला की वह शाखा भी उस समय अत्यन्त उन्नत दशा तक पहुँची हुई थी।

मूर्तिकला तो उस समय की विशेषता ही थी। देवी-देवताओं, मनुष्यों और पशु-पक्षियों की भावपूर्ण मूर्तियों के जो गुप्तकालीन अवशेष मिलते हैं, वे विक्रमकालीन परम्परा के अङ्ग हैं। कालिदास के काव्यों में मूर्तिकला के अनेक निर्देश मिलते हैं।

कालिदास के ग्रन्थों में शिल्पी, शिल्पसंघ आदि के निर्देशों के अतिरिक्त घरों और नगरों के द्वारों और पक्षकों के, राजपथ और विपणियों के जो सांगोपांग वर्णन मिलते हैं, वह ऊंचे दर्जे की शिल्पकला को सूचित करते हैं।

कालिदास के काव्यों के अध्ययन से मन पर उस समय की समृद्धि और ऐश्वर्य का जो प्रभाव पड़ता है, वह इतना गहरा है कि कभी-कभी आशंका होने लगती है कि कहीं वह केवल काल्पनिक ही तो नहीं। परन्तु जब हम उस समय के सब ऐतिहासिक अवशेषों की परीक्षा करके देखते हैं तो वह विचार जो महाकवि के काव्यों के अध्ययन से बना था, पुष्ट हो जाता है। उस समय देश की सर्वतोमुखी विभूति अपने पूर्ण यौवन पर थी। प्रजा सुखी और समृद्ध थी। शासक कर्त्तव्य-परायण और श्रीमान् थे। देश के बल-पराक्रम का आसपास के देशों पर आतंक था, जिसके फलस्वरूप बहुमूल्य उपहार चारों ओर से बरसते रहते थे। देश में सुख था, शान्ति थी और सुराज्य था।

रघुवंश का लक्ष्यबिन्दु :

प्रत्येक महती रचना का कोई न कोई लक्ष्यबिन्दु होता है। जिस रचना का कोई लक्ष्यबिन्दु न हो, वह महती नहीं कहला सकती। रचना

भौतिक हो या आध्यात्मिक, उसका लक्ष्यबिन्दु तो होना ही चाहिये। कुछ लोग कला के लिए कला और जीने के लिये जीने की कल्पना का समर्थन करते हुए समझते हैं कि हमने एक बहुत अनूठी और अनमोल कल्पना की है। वस्तुतः वह असम्भव की कल्पना है। यह ठीक है कि भोजन भूख को मिटाने के लिये किया जाता है, परन्तु भोज्य वस्तु क्या हो, और कैसे खाई जाए, इसका निश्चय भोजन करनेवाले के दृष्टिकोण या लक्ष्यबिन्दु के अनुसार होता है। जो मनुष्य शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य के लिये भोजन करता है, उसके भोजन में और जो मनुष्य स्वाद के लिये खाता है उसके भोजन में बहुत भारी अन्तर रहता है। लक्ष्य-बिन्दु से रचना में भेद आना अवश्यम्भावी है।

ऊंचे दर्जे की साहित्यिक रचनाओं का कोई न कोई लक्ष्यबिन्दु अवश्य होता है। काव्य अनेक उद्देश्यों से लिखा जाता है—

काव्यं यशसे ऽर्थकृते
कान्तासम्मिततयोपदेश युजे

काव्य की रचना यश के लिये हो सकती है, धन के लिए और मधुरतापूर्वक उपदेश देने के लिये भी सम्भव है। और इनमें से दो और तीन के मिश्रण से भी हो सकती है। यह तो स्पष्ट है कि जो काव्य केवल धन या केवल यश के लिये लिखा जायगा, वह उस ऊंचाई तक नहीं पहुंच सकता, जिस ऊंचाई तक वह पहुँचेगा जिसका लक्ष्य लोक-कल्याण है। संसार की जितनी महती साहित्यिक रचनायें हैं, उनमें काव्योपयोगी सब गुणों के अतिरिक्त यह गुण भी आवश्यक रूप से उपलब्ध होता है कि उनमें मनुष्यों के लिए एक सन्देश होता है। सन्देश से हीन साहित्य महान् नहीं हो सकता। उस सन्देश को ही मैं काव्य का लक्ष्यबिन्दु कहता हूँ।

रामायण सत्य की जीत और असत्य की हार का सन्देश देती है। महाभारत से संसार को यह शिक्षा मिलती है कि भाई-भाई के द्वेष और युद्ध के कारण समृद्ध से समृद्ध राष्ट्र भी समूल नष्ट हो सकता है।

होमर के ईलियड से संसार को यह शिक्षा मिलती है कि जाति का एक प्रमुख व्यक्ति यदि कोई भारी अपराध करे तो सम्पूर्ण जाति को उसके बुरे फल भुगतने पड़ते हैं। इसी प्रकार कालिदास के रघुवंश का भी एक सन्देश है, जिसने उसे साहित्य में इतना ऊंचा स्थान प्राप्त कराया है। उसे मैं रघुवंश का लक्ष्यबिन्दु कहता हूँ। रघुवंश में कालिदास ने रघुवंश रूपी सूर्य के उदय और अस्त की गाथा गाई है। महाराज दिलीप ने गुरु वशिष्ठ के आदेशानुसार जो तपश्चर्या की, उसका फल प्रतापी रघु के रूप में प्रकट हुआ। दिलीप ने इक्ष्वाकुकुल की पद्धति के अनुसार सौ यज्ञ किये। चिरकाल प्रजा का पालन किया और वृद्धावस्था आने पर रघु के कन्धों पर राज्य-भार डालकर अरण्य का आश्रय लिया।

रघु ने अपने प्रताप से पिता के प्रताप का भी अतिक्रमण कर दिया। उसने दिग्विजय करके चक्रवर्ती राज्य की स्थापना की। चक्रवर्ती राजा होने के कारण वह सम्राट्पद का अधिकारी बन गया।

रघु का पुत्र अज भी परम प्रतापी राजा था। दशरथ भी उसके अनुरूप ही हुआ। रघुवंश के राजा विद्वान्, धार्मिक और प्रतापी होने के कारण वंश के यश और प्रताप को दिगन्त-व्यापी बनाने में समर्थ हुए।

राम तो असाधारण महापुरुष था। उसका स्थान न केवल रघुकुल में और न केवल भारतवर्ष में, अपितु सारे संसार में अद्वितीय है। उसके उज्ज्वल चरित्र ने सम्राट् रघु के कुल की कीर्ति को अमर कर दिया।

राम के पीछे राज्य की बागडोर कुश-लव और उनके ५ अन्य भाइयों के हाथों में आई। वे भी वीर थे, परन्तु उनमें वह विशालता न थी जो उमसे पूर्व के रघुवंशी राजाओं में विद्यमान थी। वहां से हम रघुवंश के गौरव को क्षीणता की ओर जाता देखते हैं। सब मानवी-संस्थाओं और साम्राज्यों के अभ्युदय और क्षय के जो सामान्य नियम हैं उनके अनुसार मध्याह्न तक पहुँचकर राघव-कुल का सूर्य भी अस्ताचल

की ओर झुकने लगा।

कालिदास ने जिस सुन्दरता और विशदता से काव्य के पूर्व-भाग में रघुकुल के अभ्युदय का वर्णन किया है, उत्तर-भाग में भी उसी सुन्दरता और विशदता से क्षय की ओर प्रवृत्ति का वर्णन किया है। राम के पश्चात् राघवों के राज्य में जो पहला परिवर्तन हुआ वह यह था कि उसके एक के स्थान पर अनेक केन्द्र बन गये। कुश कुशावती में प्रतिष्ठापित हुआ, लव का शासन-केंद्र शरावती में बना। राम ने सिन्धु देश का राज्य अपने भाई भरत को दे दिया था। भरत ने गन्धर्वों को परास्त करके राज्य को निष्कण्टक कर दिया, और अपने पुत्र पुष्कल को पुष्कलावती में और तक्ष को तक्षशिला में अभिषिक्त कर दिया। लक्ष्मण ने अपने अङ्गद और चन्द्रकेतु नाम के पुत्रों को कारापथ नामक प्रदेश का शासक बना दिया। इस प्रकार महाराज राम के देहत्याग के साथ ही रघु द्वारा प्रतिष्ठापित विशाल साम्राज्य अनेकों टुकड़े होकर बिखर गया। परिणाम यह हुआ कि वह राघवों की पुरी अयोध्या, जिस पर सम्पूर्ण राष्ट्र को अभिमान था, थोड़े ही समय में उजड़कर खंडहरों का ढेर बन गई।

काकुत्स्थवंश की लाडली अयोध्या के उजड़ने और फिर से बसने की कहानी का वर्णन करने में कालिदास ने अपनी प्रतिभा का पूरा प्रयोग कर दिया है। जीर्ण वस्त्रोंवाली धूलि-धूसरित अयोध्या स्वप्न में कुश को दर्शन देकर अपनी कथा सुनाती है। कुश का हृदय उससे पसीज जाता है और वह राजधानी को कुशावती से उठाकर फिर अयोध्या में ले जाता है; इस प्रकार कुश अपनी भूल का सुधार कर लेता है, परन्तु साम्राज्य को राजधानी के उजड़ने से जो धक्का पहुँच चुका था, उसके प्रभाव को दूर नहीं कर सकता। अयोध्या की आभा उसी प्रकार उतर चुकी थी, जैसे एक सतीसाध्वी स्त्री की आभा पति द्वारा एक बार परित्याग करके फिर से ग्रहण करने से उतर जाती है।

कालिदास ने रघुवंश के अन्तिम दो सर्गों में कुश के २४ उत्तराधि-

कारियों का उल्लेख किया है। उनमें से कुश के पुत्र अतिथि को छोड़कर अन्य कोई भी ऐसा नहीं था, जिसके विषय में कवि को दो-चार से अधिक श्लोक कहने पड़े हों। वे सब सामान्य राजा थे। नल यौवन में ही राज्य का बोझ पुत्र के कन्धों पर डालकर वैरागी हो गया। पारियात्र अत्यन्त भोग के कारण असमय में मर गया। ध्रुवसंधि को शिकार का बहुत व्यसन था, वह शेर के हाथों मारा गया। उसका पुत्र अभी १६ वें वर्ष में ही था कि मन्त्रियों ने देश को अराजकता की आपत्ति से बचाने के लिये बालक सुदर्शन को ही सिंहासनारूढ़ कर दिया। सुदर्शन बाल्यावस्था में ही अपने महान् पूर्वजों के सिंहासन पर आरूढ़ हो गया। यद्यपि उसकी आयु और शिक्षा अधूरी थी, तो भी कुल के प्रौढ़ संस्कारों के कारण उसने राज्य के भारी बोझ को भली प्रकार उठा लिया। इस विशेषता के कारण महाकवि ने उसे विशेष सम्मान का पद प्रदान किया है—रघुवंश में उसके सम्बन्ध में १९ पद्य हैं।

सुदर्शन का राज्य-काल सामान्य रूप से सुखी और समृद्ध रहा प्रतीत होता है। जीवन के अन्तिम दिनों में राघवों की कुल-प्रथा का पालन करते हुए उसने भी युवराज अग्निवर्ण का राज्याभिषेक कर दिया है और स्वयं अरण्य का आश्रय लिया।

राम के पीछे कुश, और कुश के पीछे अतिथि—इन तीनों नामों को बींधती हुई यदि एक रेखा खींची जाय तो वह पर्याप्त झुकती हुई प्रतीत होगी। रेखा का वह झुकाव उनकी उत्तरवर्ती सन्ततियों में जारी रहा—वह झुकाव यहाँ तक पहुँचा कि जिस वंश का संस्थापक भगवान् के अनुचर कुम्भोदर सिंह के सामने खड़ा होकर भी विचलित नहीं हुआ था, उस वंश का एक राजा शिकार के प्रसंग में, सामान्य शेर का शिकार बन गया। स्पष्ट है कि रघुकुल की वह गौरव-रेखा, जो रघु और राम के कारण सूर्यमण्डल को छू रही थी, कालान्तर में झुकती-झुकती पृथ्वी को छूने लगी थी!

ध्रुवसंधि और सुदर्शन के समय में जो रेखा पृथ्वी को छू रही थी,

सुदर्शन के अयोग्य पुत्र अग्निवर्ण के समय में वह गहरे गर्त में प्रविष्ट हो गई। अग्निवर्ण सुन्दर भी था और वीर भी, परन्तु उसमें रघु के वंश के योग्य चरित्रबल नहीं था। कुछ समय तक तो उसने शासन-कार्य में ध्यान दिया, पर शीघ्र ही उस पर प्रमाद छा गया। कवि कहता है—

सोऽधिकारमभिकः कुलोचितम्
काश्चन स्वयमवर्त्तयत्समाः।
सन्निवेश्य सचिवेष्वतः परम्
स्त्रीविधेय-नवयौवनोऽभवत्॥

कुछ समय तक तो अग्निवर्ण ने अपने वंश के योग्य कुशलता से राज्य का संचालन किया, उसके पश्चात् उसे कामुकता ने दबा लिया और राज्य का कार्य मन्त्रियों पर डाल उसने अपना यौवन स्त्रियों के अर्पण कर दिया।

जब कृषक खेत की रक्षा छोड़कर विषय-भोग में पड़ जाय तो जैसे जंगली पशु खेत को खा जाते हैं, राजा के कर्तव्यच्युत होने पर राष्ट्र की भी वैसी ही दशा हो जाती है; राजा तो नष्ट हो ही जाता है। अग्निवर्ण के पतन ने उसके राज्य को भी दुर्दशाग्रस्त कर दिया। उसकी अपनी गति तो वही हुई, जो विषयलम्पट व्यक्तियों की हुआ करती है। कवि ने उसका वर्णन निम्नलिखित पद्य में किया है—

तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा
सावलम्बगमना मृदुस्वना।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ
कामयानसमवस्थया तुलाम्॥

उसे राजयक्ष्मा रोग ने ग्रस लिया, इस समाचार से राज्य-भवन में मुर्दनी छागई। राजा के कोई सन्तान नहीं थी। मन्त्रियों ने कुछ समय तक प्रजाजनों को यह कहकर आश्वासन देने का यत्न किया कि राजा पुत्र की प्राप्ति के लिए जपादि कर रहा है, परन्तु मिथ्या आश्वासन कब तक चल सकता था? एक ओर रोग और दूसरी ओर

सन्तान के अभाव की चिन्ता—दोनों ने अग्निवर्ण को अकाल में ही मृत्यु का ग्रास बना दिया। वह राघवों के राजसिंहासन को उत्तराधिकारी से शून्य छोड़कर संसार से विदा हो गया।

इस प्रकार जो यशस्वी वंश दिलीप की तपस्या, रघु के पराक्रम और राम के लोकोत्तर व्यक्तित्व के कारण मध्याह्न के सूर्य की भाँति दशों दिशाओं में देदीप्यमान हो गया था, वह ध्रुवसंधि जैसे व्यसनी और अग्निवर्ण जैसे विषयलम्पट उत्तराधिकारियों के प्रभाव से अस्ताचलोन्मुख होकर अन्तरिक्ष में विलुप्त हो गया। यही संसार के शासकों के लिए महाकवि कालिदास का अमर सन्देश है।

कालिदास विक्रमादित्य का समकालीन था। वह विक्रमादित्य किस शताब्दी का विक्रमादित्य था? उसका नाम केवल विक्रमादित्य था अथवा वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अथवा कुमारगुप्त विक्रमादित्य था? इन प्रश्नों की उलझन में न पड़कर भी इतिहास का विद्यार्थी इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि रघुवंश के निर्माता महाकवि कालिदास ने अपना काव्य जिस समय लिखा, उस समय भारत पर विक्रमादित्य पदवीधारी एक प्रतापी राजा राज्य करता था। कालिदास उस राजा का सम्मानित राजकवि था। यह कोई असम्भव बात नहीं कि कालिदास ने अपने मित्र और संरक्षक विक्रमादित्य और उसके वंशजों को शिक्षा और चेतावनी देने के लिए रघुवंश महाकाव्य की रचना की हो। रघुवंश के पाठ से महान् से महान् शासक और प्रतापी से प्रतापी विजेता भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। राज्यों और राजवंशों के भवन तपस्या, सेवाभाव और वीरता की नींव पर खड़े होते हैं और प्रमाद, लम्पटता और कायरता के आघातों से जर्जरित होकर नष्ट हो जाते हैं—रघुवंश के पाठ से हमें यही सन्देश प्राप्त होता है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

१.

तपोवन की यात्रा

रघुवंश के संस्थापक यशस्वी रघु के पिता महाराज दिलीप ने पृथ्वी के सबसे प्रथम सम्राट् वैवस्वत मनु के उज्ज्वल वंश में जन्म लिया था। दिलीप बहुत बलवान और तेजस्वी राजा था, मानो साक्षात् क्षात्र-धर्म का अवतार हो। वह जैसा बलवान् था, वैसा ही बुद्धिमान्, विद्वान् और कर्मशील था। प्रजा उसे पिता के समान मानती थी। विरोधी और आततायी उसके दंड से डरते थे। समुद्ररूपी खाई से घिरे हुए पृथ्वीरूपी किले का वह इस सुगमता से शासन करता था, मानो एक नगरी का शासन कर रहा हो।

जैसे यज्ञ की संगिनी दक्षिणा है, उसी प्रकार राजा दिलीप के साथ अटूट सम्बन्ध से बँधी हुई रानी सुदक्षिणा थी, जिसने मगधवंश में जन्म लिया था। राजा को अन्य सब सुख थे, केवल सन्तान का सुख नहीं था। सन्तान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का विचार करके राजा ने राज्य की देखरेख का भार मंत्रियों के कन्धों पर डाल दिया और महारानी को साथ ले गुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर प्रयाण किया। उस शानदार रथ में बैठे हुए राजा और रानी ऐसे शोभायमान हो

रहे थे, जैसे घने सावन के बादल में बिजली और बरसाती पवन शोभा पाते हैं। उनकी आश्रम-यात्रा बहुत ही मनोरंजक और मंगल-सूचक रही। फूलों के पराग को चारों दिशाओं में बिखेरने वाला, साल के रस से सुगन्धित सुखकारी वायु उनकी सेवा कर रहा था। मोरों की षड्ज के सदृश स्वरवाली केकायें उनके कानों को आनन्दित कर रही थीं और हरिणों के जोड़ें रास्ते के समीप ही खड़े होकर उनकी ओर निहार रहे थे। उन हिरणों की आँखों में राजा और रानी एक-दूसरे की आँखों की छवि देखकर प्रसन्न हो रहे थे। मार्ग में अहीर बस्तियों के जो मुखिया लोग ताजे मक्खन का भेंट लेकर उपस्थित होते थे, उनसे वह दोनों जंगली वनस्पतियों के नाम पूछते थे। इस प्रकार मार्ग के सुन्दर दृश्य देखते हुए महारानी सुदक्षिणा और महाराज दिलीप दिन छिपने के समय महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँच गये।

वसिष्ठ मुनि के आश्रम में उस समय सन्ध्याकाल की चहल-पहल थी। तपस्वी लोग समिधा, कुश और फल इकट्ठे करके जंगल से लौट रहे थे; ऋषि-पत्नियों द्वारा बिखेरे हुए अन्न से खिची हुई मृगों की टोलियां कुटियों के दरवाजे पर इकट्ठी हो रही थीं, मुनि-कन्यायें आश्रम-वृक्षों को सींचकर दूर हट गई थीं; ताकि पक्षी निर्भय होकर थामलों में से पानी पी सकें, और होम से उठा हुआ धुआं बाहिर से आनेवाले अतिथियों को पवित्र कर रहा था।

आश्रम में पहुंचने पर राजा दिलीप ने सारथी को आज्ञा दी की घोड़ों को आराम दो। वह स्वयं रथ से उतर गये और

फिर रानी को उतार लिया। सभ्यता के नियमों से परिचित तपस्वी लोगों ने सपत्नीक राजा का यथोचित आदर-सत्कार किया। जब ऋषि वशिष्ठ सायंकाल के सन्ध्योपासन से निवृत्त हो गये, तब राजा और रानी उनकी सेवा में उपस्थित हुए। ऋषि के समीप उस समय उनकी पत्नी अरुन्धती विराजमान थी, मानो स्वाहा यज्ञ की अग्नि के समीप विराज रही हो। राजा और राजपत्नी ने ऋषियुगल के चरणों में झुककर प्रणाम किया। ऋषियुगल ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

ऋषि को जब यह सन्तोष हो गया कि अतिथि-पूजा से राजयुगल की थकान उतर गयी है, तब उन्होंने राज्य के कुशल-क्षेम के सम्बन्ध में प्रश्न किये। राजा ने उत्तर दिया—हे गुरो, आपके प्रसाद से राज्य में सब कुशल है। आपके मन्त्रबल ने मेरे तीरों को अन्यथासिद्ध-सा कर दिया है। आपके यज्ञों में, अग्निकुण्ड में डाला हुआ हवि मेघों से जल बनकर बरस जाता है, जिससे सदा सुभिक्ष बना रहता है। मेरी प्रजा सौ साल तक जीती है और निर्भय होकर रहती है। यह आपके ब्रह्मतेज का ही फल है। यह सब कुछ होते हुए भी, हे गुरुवर, रत्नों के पैदा करनेवाली यह द्वीप सहित भूमि मेरे मन को संतुष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि आपकी इस बहू की गोद संतान-रूपी रत्न से शून्य है। भविष्य में कुल की लता को कटता देखकर मेरे पूर्वपुरुष अवश्य ही परम दुःखी होते होंगे, और मेरी अर्पित जलाञ्जलि उनके मुख में जाने से पूर्व ही चिन्ता के निश्वासों से कुछ गर्म हो जाती होगी। जैसे स्नानरहित हाथी को चुभनेवाला खूंटा कष्ट देता है,

सन्तान न होने से पितृऋण का सन्ताप मुझे उसीप्रकार तपा रहा है। हे तात, जिस विधि से मैं पितृऋण से मुक्त हो सकूं, वह कीजिये। इक्ष्वाकुवंश के लोग प्रत्येक कठिनाई की नदी को आपके विधान से ही पार करते रहे हैं।

राजा के वचन सुन ऋषि क्षणेक आंखें मूंदकर ध्यान में मग्न रहे, मानो किसी तालाब में सब मछलियां सो गई हों। ध्यानावस्था में ऋषि ने जो कुछ देखा, वह राजा को बतलाते हुए कहा—

हे राजन्! एक बार देवराज इन्द्र से मिलकर जब तुम स्वर्ग से पृथ्वी की ओर आ रहे थे, सुरभि गौ कल्पतरु की छाया में विश्राम कर रही थी। रानी ऋतुस्नाता है, इस विचार से तुम घर आन की जल्दी में थे, और पूजा के योग्य सुरभि की उपेक्षा करके चले आये। सुरभि ने इस तिरस्कार से रुष्ट होकर तुम्हें शाप दिया कि जब तक तुम मेरी सन्तान की आराधना न करोगे, तब तक तुम्हारे सन्तान न होगी। आकाश-गंगा के ठांठें मारते हुए जल-प्रवाह में दिग्गज स्नान कर रहे थे, जिनके शोर के कारण सुरभि का शाप न तुमने सुना और न तुम्हारे सारथि ने। जो पूजा के योग्य हैं, उनका तिरस्कार करने से मनुष्य के सुखों का द्वार बन्द हो जाता है। तुम्हारी इच्छाओं के द्वार की सांकल बन्द होने का भी यही कारण हुआ। सुरभि आजकल प्राचेतस् के यज्ञ के निमित्त पाताल में गई है। उसकी पुत्री हमारे इस आश्रम में विद्यमान है। तुम और तुम्हारी पत्नी उसे सेवा से संतुष्ट करो, तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

ऋषि के वाक्य अभी समाप्त भी न हुए थे कि वन से लौटती हुई नन्दिनी नाम की निन्दारहित गौ सामने आगई। नन्दिनी का रंग नई कोंपल के समान चिकना और लालिमा लिए हुआ था। उसके माथे पर सफेद रोएं का टीका ऐसे शोभायमान हो रहा था, जैसे सन्ध्याकाल के आकाश पर चन्द्रमा। बछड़े को देखकर स्वयं टपकनेवाले पावन दूध की धार से वह कुण्डोध्नी पृथ्वी को पवित्र कर रही थी। उसके खुरों से उठनेवाले रज के रेणुओं में स्नान करके राजा ने मानो तीर्थस्नान कर लिया। ऋषि ने नन्दिनी के उस समय के दर्शन को मनोरथ-सिद्धि के लिए कल्याणकारी जानकर राजा से कहा—

हे राजन्, नाम लेते ही यह कल्याणी सामने आगई, इससे तुम अपना मनोरथ पूरा हुआ मानो। जैसे विद्या को अभ्यास से प्रसन्न किया जाता है, इसीप्रकार वनवासियों-सा रहन-सहन करके निरन्तर सेवा द्वारा नन्दिनी को प्रसन्न करो। इसके चलने पर चलो, ठहरने पर ठहरो, बैठने पर बैठो और जल पीने पर जल पियो। बहू को भी चाहिए कि इसकी पूजा करे। वन जाने के समय कुछ कदम तक छोड़ने जाये और वापिस आने पर कुछ कदम आगे बढ़कर स्वागत करे। जब तक यह प्रसन्न न हो, तब तक हे राजन्, तुम इसकी सेवा करो। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और तुम्हारा कुल अविच्छिन्न रहेगा।

राजा ने सिर झुकाकर गुरु के आदेश को स्वीकार किया। इस बातचीत में रात हो गई थी। मधुर सत्य बोलनेवाले

उस ऋषि ने प्रजाओं के पालक दिलीप को सोने की आज्ञा देते हुए ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि राजा का रहन-सहन वन-वासियों के सदृश हो जाये। राजा और रानी, कुलपति द्वारा बतलाये हुए झोपड़े में कुशों की सेज पर रात भर सोये। प्रातःकाल होने पर आश्रम के छात्रों के वेदपाठ से उनकी नींद खुली।

२.

दिलीप की तपश्चर्या

प्रात:काल होने पर रानी सुदक्षिणा ने नन्दिनी का गन्ध और माला से सत्कार किया। जब बछड़ा दूध पीकर बांधा जा चुका, तब यशस्वी राजा ने गौ को खूंटे से खोल दिया। जैसे स्मृति-ग्रन्थ वेदों का अनुसरण करते हैं, उसीप्रकार नन्दिनी के खुरों के स्पर्श से पवित्र वनमार्ग पर, महारानी भी पीछे-पीछे चलीं। दयावान् राजा ने पत्नी को वन जाने से रोककर नन्दिनी की रक्षा का बोझ अपने कन्धों पर लिया, मानो चार स्तनरूपी समुद्रोंवाली पृथ्वी की रक्षा का बोझ संभाला हो। राजा को वन की ओर जाते देखकर राजपुरुष भी पीछे-पीछे चलने लगे। राजा ने उन्हें रोक दिया क्योंकि मनु की सन्तान दूसरे से रक्षा नहीं चाहती, अपने बाहुबल पर ही भरोसा रखती है। वन में सम्राट् ने नन्दिनी के भोजन के लिए स्वादु-स्वादु घास एकत्र की, खुजली होने पर खुजलाया, जंगली दंशों को हटाया और रास्ते की रुकावटों को दूर करके इच्छानुसार घूमने का मार्ग साफ किया। जब नन्दिनी ठहरती तब राजा भी ठहर जाता, जब वह चलती तो चलने लगता; जब नन्दिनी बैठ जाती तब

राजा बैठ जाता, और जब वह जल पीती तब जल-पान करता था। इसप्रकार राजा छाया के समान उसके साथ-साथ चलता था। जैसे, जब गजराज के कपोलों से मद न चू रहा हो, तब भी डील-डौल के कारण उसकी गजराजता का अनुमान लगाया जा सकता है, उसीप्रकार सब राजसी ठाठ का परित्याग कर देने पर भी चेहरे के तेज से राजा का राजपन साफ-साफ झलक रहा था। लताओं से केशों का जूड़ा बांधे हुए मुनिवेश में वह नरपति, मुनि की होम-धेनु की रक्षा के बहाने से हिंसक जन्तुओं को नियन्त्रण में लाने के लिए जङ्गल में घूम रहा था। सब सेवकों का विसर्जन कर देने के कारण बिल्कुल एकाकी वह वरुण देवता के समान ओजस्वी राजा जिस मार्ग से निकलता था, उसके दोनों ओर लगे हुए वृक्ष चहचहाते पक्षियों के शब्दों से उसका जय-जयकार करते थे। वृक्षों पर चढ़ी हुई कोमल लतायें पवनरूपी हाथों से अग्नि समान तेजस्वी दिलीप पर पुष्पवर्षा कर रही थीं, मानो नगर की कन्यायें अपने घरों की अटारियों से लाजों की वर्षा कर रही हों। खोखले बांसों में तारस्वर से गूंजते हुए पवन की ध्वनि द्वारा वनदेवता उसके यश का गान कर रहे थे। हिमालय की गोद में बहनेवाली नदियों के तुषार के स्पर्श से शीतल और वृक्षों के फूलों के सम्पर्क से सुगन्धित पवन, छाते के बिना धूप में भ्रमण करते हुए राजा की थकान को उतार रहा था। दिन व्यतीत हो जाने पर, अपने परिभ्रमण से दिशाओं को पवित्र करके, कोंपल के समान, तांबे जैसे रंग वाली सन्ध्या और मुनि की गौ घर की ओर लौटीं। जिसके

दूध से देवता, पितृगण और अतिथियों को संतुष्ट किया जाता था, राजा उस पवित्र गौ के पीछे-पीछे चला। नन्दिनी पीछे चलनेवाले राजा से ऐसे शोभायमान हो रही थी, जैसे श्रद्धा विधिपूर्वक किये गये अनुष्ठान से शोभायमान होती है। उस समय जङ्गली सुअर जोहड़ों में से निकल रहे थे, मयूर अपने डेरों की ओर जा रहे थे, और हरिण दिन के भ्रमण से लौटकर हरे मैदानों में विश्राम कर रहे थ। दूध से भरे हुए स्तनों के कारण नन्दिनी और शरीर के विशाल डीलडौल के कारण राजा दिलीप, दोनों ही ऐसी शानदार चाल चल रहे थे कि आश्रम के मार्ग की शोभा दस गुना हो गयी थी।

मुनि वसिष्ठ की गौ के पीछे-पीछे आते हुए भर्त्ता को रानी अत्यन्त प्यासे नेत्रों से देर तक एकटक निहारती रही। आगे राजा, पीछे रानी और बीच में नन्दिनी—आश्रम में इस क्रम से जब वह तीनों पहुंचे, तो ऐसा प्रतीत होता था मानो दिन और रात के मध्य में सन्ध्या पधार रही हो। ठिकाने पर पहुँचकर सुदक्षिणा ने अक्षतों का पात्र हाथ में लेकर नन्दिनी की प्रदक्षिणा की, फिर प्रणाम किया और अन्त में फल-सिद्धि के द्वार के सदृश शृंगों के मध्यस्थान की पूजा की। नन्दिनी बछड़े के लिए उत्सुक थी, तो भी उसने शांतभाव से पूजा ग्रहण कर ली, इससे राजारानी बहुत प्रसन्न हुए। भक्तिपूर्वक उपस्थित हुए प्रार्थियों के प्रति ऐसे पावन व्यक्तियों की प्रसन्नता के चिन्ह पहले ही प्रकट हो जाते हैं।

इसीप्रकार राजा की दिनचर्या चलने लगी। वह रात को नन्दिनी के सो जाने पर सोता, प्रातः उठने पर उठता और

दिन चढ़ने पर नन्दिनी के पीछे-पीछे धनुष हाथ में लेकर जङ्गल जला जाता। सम्राट् और साम्राज्ञी को यह व्रत पालन करते हुए इक्कीस दिन व्यतीत हो गये।

एक दिन नन्दिनी अपने सेवक के भाव की परीक्षा करने के लिए गङ्गा के प्रपात के समीप हरे-हरे घास से सुशोभित हिमालय की गुफा में घुस गयी। कोई हिंसकप्राणी भी मुनि की यज्ञ-धेनु का कुछ नहीं बिगाड़ सकता, इस भावना से राजा बिल्कुल निश्चिन्त था और पर्वत की शोभा निहार रहा था कि एक शेर ने धेनु को धर दबाया। उसका आर्तनाद गुफा से प्रतिध्वनित होकर गूंज उठा, जिसने हिमालय में लगी हुई राजा की दृष्टि को मानो रासों से पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। धनुर्धारी दिलीप ने देखा कि उस पाटल गौ के समीप केसरी शेर खड़ा हुआ है, मानो तांबे के रंग की चट्टान पर लोध्र का पेड़ खिला हुआ हो। शेर के समान चालवाले राजा के मन में शेर के इस अविनय से अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई और उसका हाथ स्वभाव से तूणीर से तीर निकालने के लिए बढ़ा। परन्तु राजा ने दुःख और आश्चर्य से अनुभव किया कि उसका दायां हाथ नख की प्रभा से रंगे हुए तीर की केरी पर पहुँचकर रुक गया—ऐसा गति-हीन हो गया मानो किसी चित्र का अंग हो।

क्रोध से भरे हुए फणियर सांप की जो दशा मन्त्र और औषधि द्वारा काटने की शक्ति के रोक देने पर हो जाती है—भुजा के शक्तिहीन हो जाने पर राजा की वही दशा हो गई। वह अपने भड़के हुए तेज से अन्दर ही अन्दर जलने लगा।

बलिष्ठ हाथ के रुक जाने के कारण क्रोध और आश्चर्य में पड़े हुए राजा के आश्चर्य को और अधिक बढ़ाता हुआ सिंह मनुष्य की भाषा में कहने लगा—

हे राजन्, अपना हाथ तूणीर से हटा लो। यदि तुम तीर चला दोगे, तो भी वह यहां व्यर्थ ही जायगा। जो वायु का झोंका पेड़ को जड़ से उखाड़कर फेंक देता है, वह चट्टान से टकराकर व्यर्थ हो जाता है। तुम मुझे साधारण शेर मत समझो। कैलाश पर्वत के समान सफेद वृषभ पर बैठने के समय, भगवान् शंकर मेरी पीठ को पायदान बनाकर पवित्र करते हैं। मेरा नाम कुम्भोदर है, मैं भगवान् का सेवक हूं। यह जो देवदारु का वृक्ष सामने दिखाई दे रहा है, इसे मेरे स्वामी ने अपना बच्चा माना हुआ है। माता पार्वती ने सोने के कलश से पानी देकर इसे ऐसे पाला है, जैसे छाती के दूध से बच्चे को पाला जाता है। एक बार एक जङ्गली हाथी ने पीठ खुजलाकर इसकी छाल उतार दी थी। उससे मां को ऐसा दुःख हुआ मानो सेनापति कुमार को असुरों के अस्त्रों ने घायल कर दिया हो। तभी से स्वामी ने मुझे इस वृक्ष की रखवाली पर नियुक्त कर दिया है और यह नियम बना दिया है कि जो शिकार यहां स्वयं आजाए उसी से अपना पेट भरता रहूँ। जैसे राहु को तृप्ति के लिए चन्द्रमा का अमृत प्राप्त होता है, आज परमेश्वर ने उसीप्रकार मेरी भूख का निवारण करने के लिये यह बलि भेजने की कृपा की है। हे राजन्, जिसकी रक्षा करनी हो, यदि यत्न करने पर भी शस्त्रों से उसकी रक्षा न हो सके तो शस्त्रधारी को

दोष नहीं दिया जा सकता। तुम लज्जा मत करो। तुमने गुरु के प्रति अपनी भक्ति प्रकट कर दी, अब तुम घर लौट जाओ।

महाराज ने जब पशुओं के सम्राट् के प्रगल्भ वचनों से यह जाना कि भगवान् शंकर के प्रभाव ने उसके हाथों और शस्त्रों की शक्ति को क्षीण कर दिया है, तो उसके मन में अपने प्रति जो ग्लानि का भाव उत्पन्न हुआ था, वह हल्का हो गया। राजा ने सिंह से कहा—

हे मृगेन्द्र, मेरा हाथ शंकर के प्रभाव से रुक गया है, इस कारण मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसे सुनकर शायद तुम हँस पड़ोगे। परन्तु तुम तो प्राणियों के मन की बात भी जानते हो, तब कहने में ही क्या हानि है। सृष्टि की रचना, रक्षा और संहार करनेवाले भगवान् के सामने मैं सिर झुकाता हूँ, परन्तु मैं गुरु के यज्ञ के साधनभूत इस गोधन को नष्ट होता भी तो नहीं देख सकता। सो हे वन के स्वामी! अपनी भूख की मेरे शरीर से निवृत्ति कर लो। सन्ध्या के समय महर्षि की इस धेनु का बछड़ा अपनी माँ की बाट जोह रहा होगा, इसे छोड़ दो।

देवाधिदेव का सेवक राजा दिलीप की बात सुनकर कुछ हँसकर कहने लगा। बोलते समय उसके बड़े-बड़े दाँतों की सफेद किरणों से गुफा का अन्धकार नष्ट हो रहा था। उसने कहा—

पृथ्वी पर तुम्हारा एकछत्र राज्य है, चढ़ती जवानी है और सुन्दर शरीर है। छोटी-सी बात के लिए सब कुछ

त्याग देने का संकल्प प्रकट करते हुए तुम मुझे नासमझ से प्रतीत होते हो। यदि तुम दया के कारण अपनी बलि दे रहे हो तो सोचो कि तुम्हारे मरने से केवल एक गौ बचेगी, और जीवित रहोगे तो चिरकाल तक सम्पूर्ण प्रजा की, पिता के समान, आपत्तियों से रक्षा कर सकोगे। हो सकता है कि तुम्हें गुरु के अग्नि समान क्रोध से डर लगता हो। उसका निवारण तुम करोड़ों दुधार गौओं का दान करके कर सकते हो। अतः तुम्हें उचित है कि अपने निरन्तर सुखी और स्वस्थ शरीर की रक्षा करो, क्योंकि पृथ्वी के चक्रवर्ती राज्य और स्वर्ग के राज्य में केवल पृथ्वी को छूने का भेद है, अन्यथा दोनों एक समान हैं।

केसरी इतना कहकर चुप हो गया तो प्रतिध्वनि द्वारा मानो गुफा ने भी उसके कथन का अनुमोदन किया। राजा उसका उत्तर देने लगा तो उसने देखा कि मुनि की गौ बहुत कातर आँखों से उसकी ओर एकटक निहार रही है। राजा ने कहा—क्षत्रिय उसे कहते हैं, जो प्रहार से निर्बल की रक्षा करे। मैं तुम से नन्दिनी की रक्षा नहीं कर सका, ऐसी दशा में अपने कर्तव्य से हीन और निन्दा से कलंकित प्राणों को बचाकर क्या करूँगा? तुम कहते हो कि मैं बहुत-सी अन्य धेनुओं की भेंट देकर गुरु को सन्तुष्ट कर दूं। यह नन्दिनी गौ सुरभि के बराबर महत्व रखती है। असंख्य गौ भी इसकी बराबरी नहीं कर सकतीं। यदि तुम्हें भगवान् रुद्र का सहारा न होता, तो तुम इस पर प्रहार न कर सकते। सो, हे मृगेन्द्र! मैं अपने शरीर को मूल्य रूप में देकर तुमसे इसे खरी-

देना चाहता हूँ। यह न्याय की बात है, क्योंकि इससे तुम्हारी भूख भी मिट जायगी, और मेरे गुरु का यज्ञ भी खंडित न होगा। तुम्हीं सोचकर देखो, भगवान् की आज्ञा को मानकर तुम प्राण-पण से इस देवदारु के पेड़ की रक्षा कर रहे हो। क्या इसी प्रकार गुरु की यज्ञधेनु की रक्षा में जीवन की बाजी लगा देना मेरा कर्तव्य नहीं है? मेरे जैसे व्यक्ति धर्म के सामने अपने हाड़-चाम के पिण्ड का कोई दाम नहीं समझते। यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति दया का भाव उत्पन्न हुआ है, तो उसका प्रवाह मेरे यशरूपी शरीर की ओर प्रवाहित करो। सज्जनों की मैत्री का जन्म आपस की बातचीत से ही हो जाता है। वह हम दोनों में हो चुका—इसकारण हे भगवान् शंकर के सेवक, मेरी पहली इच्छा का तिरस्कार न करो। मुझे कलेवा बनाकर ऋषि की धेनु को छोड़ दो। सिंह ने उत्तर में कहा—बहुत अच्छा! उस समय राजा ने अनुभव किया कि उसके हाथों पर जो प्रतिबन्ध लगा था, वह हट गया। राजा ने अपने हथियार रख दिये, और माँस के पिण्ड के सामान अपने निश्चेष्ट शरीर को बलिदान के लिए उपस्थित कर दिया।

प्रजाओं के पिता के समान सम्राट् दिलीप सिर नीचा करके सिंह के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। राजा ने आश्चर्य से देखा कि स्वर्ग के देवता उस पर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। इतने में शब्द सुनाई दिया—बेटा उठो! राजा ने आँखें उठाकर देखा तो वहाँ शेर का कोई चिन्ह भी नहीं था। हाँ, माँ के समान दूध बरसाती हुई नन्दिनी सामने खड़ी थी।

राजा को आश्चर्य में डूबा हुआ देखकर नन्दिनी ने कहा—

हे सज्जन, मैंने अपनी माया के बल से तेरी परीक्षा ली है, अन्यथा ऋषि के प्रभाव से मुझ पर तो यमराज भी आक्रमण नहीं कर सकता, साधारण हिंसक पशुओं की तो बिसात ही क्या है ? तूने अपने गुरु के प्रति भक्ति और मेरे प्रति दया के भाव से मुझे प्रसन्न कर लिया है। हे पुत्र, तू यथेष्ट वर माँग ! मैं केवल दूध ही नहीं देती, कामनाओं की पूर्ति भी करती हूँ।

नन्दिनी के इन वचनों से आश्वासन पाकर, राजा ने शक्ति द्वारा वीरता का यश फैलानेवाले अपने हाथों को जोड़कर नन्दिनी को प्रणाम किया, और वर माँगा कि सुदक्षिणा की कोख से वंश का संस्थापक पुत्ररत्न उत्पन्न हो। ऐसा ही होगा—यह आशीर्वाद देकर नन्दिनी ने राजा को आदेश दिया कि पत्ते के दोनों में लेकर मेरा दूध पियो; तुम्हारी कामना पूरी होगी। राजा ने निवेदन किया—माँ, जैसे मैं पृथ्वी की रक्षा करके केवल उसका छठा भाग कर के रूप में लेता हूँ, उसीप्रकार बछड़े और यज्ञ से बचा हुआ तुम्हारा दूध मैं ऋषि की अनुमति से ग्रहण करूंगा।

राजा के उत्तर से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर नन्दिनी हिमालय की गुफा से निकल आश्रम की ओर रवाना हुई। आश्रम में पहुँचकर राजा नें गुरु वसिष्ठ को शुभ समाचार सुनाया। रानी सुदक्षिणा ने राजा के प्रसन्नमुख को देखकर ही सब कुछ समझ लिया था, राजा ने जो शुभ-समाचार सुनाया वह तो पुनरुक्तिमात्र ही हुआ। सायंकाल होने पर यज्ञ और

बछड़े से बचे हुए नन्दिनी के दूध को, गुरु की आज्ञा पाकर राजा ने इस प्रकार पिया, मानो शुद्ध यश का पान कर रहा हो।

दूसरे दिन प्रातःकाल ऋषि ने राजदम्पती को आशीर्वाद देकर विधिपूर्वक विदाई दी। दोनों ने पहले यज्ञाग्नि की, फिर गुरुपत्नी अरुन्धती सहित गुरु वसिष्ठ की और अन्त में बछड़े समेत नन्दिनी की प्रदक्षिणा की। अपने पूर्ण हुए मनोरथ के समान विघ्नरहित और सुखकारी रथ से वे दोनों घर की ओर चले। जैसे अमावस्या के अनन्तर अन्तरिक्ष में फिर से दिखाई देनेवाले औषधियों के स्वामी चन्द्र का दर्शन किया जाता है, चिरकाल के पश्चात् प्रजाओं की भलाई के लिए की गई तपस्या से कृशकाय दिलीप का प्रजाजनों ने उसीप्रकार प्यासे नेत्रों से पान किया, और झंडियों से राजधानी को सजा कर अभिनन्दन किया।

महाराज सिंहासनारूढ़ होकर समुद्र-मेखला पृथ्वी का शासन करने लगे।

कुछ समय के पश्चात्, जैसे अत्रि मुनि के नयनों से उत्पन्न चन्द्रमा को आकाश ने धारण किया था, जैसे अग्नि द्वारा फेंके हुए स्कन्द रूपी तेज को गंगा ने सँभाल लिया था, वैसे ही रानी सुदक्षिणा ने कुल के लिए उत्कृष्ट गर्भ को धारण किया।

३.

रघु की अग्नि-परीक्षा

कुछ दिन पश्चात् रानी सुदक्षिणा गर्भवती हुई। जैसे प्रभात-काल के समीप आने पर चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित रात्रि के आकाश पर पीलापन छाजाता है, उसीप्रकार सुदक्षिणा के चेहरे पर भी लोध्रपुष्प की-सी सफेदी आने लगी। ग्रीश्मऋतु के सूखे हुए तालाब की मिट्टी में वर्षा की बूंदों से जो सुगन्धि उत्पन्न होती है, उसे सूंघकर जैसे जंगली हाथी प्रसन्न होता है, वैसे ही रानी के मुँह से मिट्टी की बास लेकर राजा भी प्रसन्न होता न थकता था। मानो रानी यह सोच रही हो कि मेरी कोख से जो राजकुमार जन्म लेगा, उसे पृथ्वी का ही तो उपभोग करना है। यह मुझ से लज्जावश स्वयं कुछ न कहेगी, तुम बतलाओ कि यह क्या चाहती है—इसप्रकार सहेलियों से पूछ-पूछकर राजा सुदक्षिणा की इच्छाओं को तत्काल पूरा कर देता था। तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जो पराक्रमी धनुर्धारी के लिए दुर्लभ हो। क्रम से सुदक्षिणा की प्रारम्भिक क्षीणता दूर होने और पूर्णता की सुन्दरता आने लगी। मानो पुराने पत्तों के झड़जाने पर नई सुन्दर कोंपलें लता पर आगई हों। राजा ने पुरोहितों से यथा-

समय पुंसवनादि संस्कार विधिपूर्वक कराये। दसवें मास में चिकित्सा के जानने वाले कुशल वैद्यों द्वारा गर्भपोषण की प्रक्रिया हो जाने पर, बादलों से भरे हुए अन्तरिक्ष की भाँति परिपूर्ण पत्नी को देखकर राजा ने अनहद प्रसन्नता का अनुभव किया।

अच्छे मुहूर्त में, जब पांचों ग्रह अनुकूल थे, शची-समान राजपत्नी ने पुत्ररत्न को उसीप्रकार जन्म दिया जैसे प्रभाव, उत्साह और मन्त्रणा से सम्पन्न शक्ति अनश्वर सम्पत्ति को जन्म देती है। उस समय दिशायें खिल उठीं, सुखकारी पवन बहने लगा, यज्ञाग्नि चारों ओर लपटों को फैलाकर यज्ञ की सामग्री ग्रहण करने लगी---इसप्रकार उस क्षण में सभी कुछ कल्याण की सूचना देने लगा। ऐसे महापुरुषों का जन्म संसार के लिए ही होता है। जिस समय सूतिकागृह में उस नवजात को बिस्तर पर लिटाया गया तो उसके उग्र तेज के सामने रात के समय जलनेवाले दीपक मन्द पड़ गये, मानो दीवार पर दीपकों के केवल चित्र बने हुए हों। महलों से आकर जिन परिचारकों ने पुत्रजन्म का शुभ समाचार सुनाया, महाराज ने उन्हें चन्द्र के समान उज्ज्वल राजछत्र और शाही चामरों को छोड़कर अन्य जो कुछ भी उन्होंने मांगा, देने में संकोच नहीं किया। जिस समय राजा दिलीप ने पुत्र के चन्द्र समान सुन्दर मुख को एकटक दृष्टि से देखा, उस समय उसके हृदय-रूपी सागर में प्रसन्नता का तूफान-सा उमड़कर किनारों की सीमा को पार कर रहा था। ऋषि वसिष्ठ ने वन से आकर कुमार के जातकर्म सम्बन्धी सब संस्कार विधिपूर्वक कराये।

जिसप्रकार खान में से निकले हुए रत्न की पत्थर पर घिसने से आभा बढ़ती है, संस्कारों से रघु की आभा भी उसीप्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी। उस सुअवसर पर, केवल सम्राट् दिलीप के घर पर ही नहीं, अपितु देवताओं के विहार-स्थान अन्तरिक्ष में भी मंगलमय मधुर बाजे बजने लगे और अप्सरायें प्रसन्नता से नृत्य करने लगीं। प्राय: राजा लोग ऐसे उत्सवों पर कैदियों को छोड़ देते हैं, पर उसके राज्य में तो कोई कैदी ही नहीं था। हाँ, वह स्वयं ही अपने पूर्व-पुरुषों के विद्यमान पितृऋण से मुक्त हो गया। 'रघु' शब्द का अर्थ है—जाने वाला। यह बालक विद्यारूपी समुद्र को पार करे और शत्रुओं के अन्त तक जा पहुँचे—इसी संकल्प से राजा ने उसका नाम 'रघु' रखा। जिसप्रकार शिव और पार्वती कुमार के जन्म से तथा इन्द्र और शची जयन्त के जन्म से प्रसन्न हुए थे, दिलीप और सुदक्षिणा भी रघु के जन्म से उसीप्रकार प्रसन्न हुए। उन दोनों का चकवा-चकवी का-सा हार्दिक प्रेम, जो पहले ही बहुत गहरा था, पुत्र में एकत्र होकर और भी अधिक गहरा हो गया। रघु चन्द्रमा की कलाओं की भांति प्रतिदिन बृद्धि पाने लगा। पहले वह धाई की अंगुलि पकड़कर चलने लगा और उसके अनुकरण में शब्द बोलने लगा, फिर अपने समान आयुवाले अमात्य-पुत्रों के साथ मिलकर लिपि सीखने लगा। जैसे नदीरूपी मुख से अनेक प्रकार के पदार्थ समुद्र में पहुँच जाते हैं, उसीप्रकार लिपि द्वारा रघु ने भी विद्यारूपी महासमुद्र में प्रवेश किया। कुछ समय पीछे उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, जिसके पश्चात् गुरुजनों ने उसे विधिपूर्वक शिक्षा

देना आरम्भ कर दिया।

बड़े परिश्रम से अध्ययन किया। जैसे सूर्य अपनी किरणों के बल से चारों दिशाओं को पार कर लेता है, वैसे रघु ने भी बुद्धिबल से समुद्र के समान विस्तीर्ण चारों विद्याओं को पार कर लिया। अस्त्र-शिक्षा तो उसने अपने पिता से ही प्राप्त की। ब्रह्मचारियों के योग्य मृगछाला पहिनकर वह पिता से ही शस्त्रास्त्र-विद्या सीखता था, क्योंकि उसका पिता केवल पृथ्वी का प्रमुख शासक ही नहीं था, वह सर्वोत्कृष्ट धनुर्धारी भी था। धीरे-धीरे रघु के बचपन से यौवन फूटने लगा, जिससे उसका शरीर सुन्दर और गम्भीर दिखाई देने लगा—मानो बछड़ा विशाल बैल की पदवी को छू रहा हो, मानो हाथी का बच्चा गजराज के रूप में परिणित हो रहा हो। समय अनुकूल देखकर राजा ने रघु का दीक्षान्त-संस्कार किया, और विधिपूर्वक विवाह कर दिया। अब तो रघु की कलायें प्रतिदिन बढ़ने लगीं। जब उसका जवानी से भरा हुआ शरीर, लम्बे और बलिष्ठ बाहु, उभरे हुए कन्धे और विशाल वक्षःस्थल दृष्टिगोचर होते थे, तब दिलीप का शरीर छोटा प्रतीत होने लगता था, परन्तु जब रघु की आँखों पर दृष्टि पड़ती थी, तब वे पिता के सामने सदा झुकी हुई दिखाई देती थीं। उचित अवसर देखकर, सम्राट् दिलीप ने अपने कन्धों का बोझ हल्का करने के लिए रघु को युवराज के पद से विभूषित कर दिया। इससे उसकी शक्ति और भी अधिक असह्य हो गई, मानो जंगल को वायु की सहायता मिल गई हो, मानो बादलों के हट जाने से सूर्य का तेज चमक उठा हो और मानो गण्ड-

स्थल से मद फूट पड़ने के कारण हाथी का बल बढ़ गया हो।

चक्रवर्ती आर्यराजाओं की पद्धति का अनुकरण करते हुए, रघु को युवराज के पद पर नियुक्त करके सम्राट् दिलीप ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया। अश्व की रक्षा का कार्य युवराज रघु और उसकी अनुयायिनी राजपुत्रों की सेना को सौंपकर राजा यज्ञ करने में संलग्न हो गया। इस प्रकार निन्दानवे अश्वमेध यज्ञ बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरे कर लिये। जब सौवीं बार अश्वमेध का घोड़ा दिग्विजय के लिये निकला तो युवराज और उसके धनुर्धारियों ने आश्चर्य से देखा कि अकस्मात् उनके सामने से घोड़ा लुप्त हो गया है। कुमार की सेना घबराकर रुक गई। कुमार भी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। उसीसमय नन्दिनी धेनु मानो कुमार के संकट को टालने के लिए वहाँ आ पहुँची। रघु ने उसे दैवी सन्देश समझकर नन्दिनी के अंगजल से अपनी आँखों को धो डाला। धोने पर उसकी आँखें परोक्ष को देखने लगीं, जिससे उसने क्या देखा कि स्वयं स्वर्ग के राजा इन्द्र यज्ञ के घोड़े को लिए जा रहे हैं। घोड़ा बार-बार छूटने की चेष्टा कर रहा है और इन्द्र का सारथि उसे रोक रहा है। हरे रंग के सौ घोड़ों और सौ चक्षुओं से कुमार ने देवराज को आसानी से पहचान लिया, और आकाश-मण्डल को गुंजा देने वाले गम्भीर स्वर से उन्हें मानो पीछे लौटाते हुए कहा—

हे देवताओं के राजा, यज्ञ का भाग प्राप्त करनेवाले देवताओं में सब से पहला स्थान आप ही का है। मेरे पिता निरन्तर यज्ञ करने में संलग्न हैं। आश्चर्य की बात है कि आप

ही उसमें विघ्नकारी हो रहे हैं। आप त्रिलोकी के रक्षक हैं। जो लोग यज्ञ का नाश करते हैं, दिव्यदृष्टि से आप ही उनका नियन्त्रण करते हैं। यदि आप ही धर्मात्मा लोगों के कार्यों में विघ्नकारी बनने लगेंगे, तो धर्म कहाँ रहेगा? इसकारण, भगवन्, यज्ञों के अंग इस अश्व को आप छोड़ दीजिये। मनुष्यों को वेदमार्ग दिखलाने वाले आप जैसे महानुभावों को मलिन मार्ग पर नहीं चलना चाहिए।

रघु के इस प्रगल्भ वचन को सुनकर देवराज ने अपने रथ को लौटा लिया, और उत्तर दिया—

हे राजपुत्र, तुमने जो बात कही, वह ठीक ही है, परन्तु यशस्वी पुरुषों को अपने यश की रक्षा भी तो करनी चाहिए। तुम्हीं देखो कि सारे संसार के सामने तुम्हारा पिता यज्ञों द्वारा मेरे यश को धुंधला करने की तैयारी कर रहा है। जैसे संसार में केवल एक विष्णु हैं और एक महादेव हैं, उसी प्रकार सौ यज्ञ करनेवाला शतक्रतु भी एक मैं ही हूँ। किसी दूसरे व्यक्ति को इस पद को प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। इस कारण मैंने तुम्हारे पिता के घोड़े का अपहरण कर लिया। जैसे सगर की सन्तान, कपिल मुनि के समीप अश्व के लिए जाकर भस्मसात् हो गई थी, तुम भी वैसे ही दुःसाहस मत करो।

इन्द्र के वचन सुनकर कुमार ने निर्भयतापूर्वक हँसते हुए कहा—यदि आपका यही निश्चय है तो अपना हथियार संभालिये। रघु को विजय किये बिना आप यज्ञ के घोड़े को नहीं ले जा सकेंगे। रघु ने धनुष में तीर लगाने के लिये तूणीर की ओर

हाथ बढ़ाया। रघु के चलाये बलवान् तीर की हृदय पर चोट खाकर देवराज का कोप भी भड़क उठा और उसने नये बादलों पर शोभायमान होनेवाले इन्द्रधनुष के सदृश विशाल और सुन्दर धनुष पर आमोघ वाण चढ़ाया। देवराज का वाण रघु की छाती पर जाकर बैठा। उसे अब तक राक्षसों के रुधिर पीने की आदत थी। उसने पहली बार मानो बड़ी उत्सुकता से मनुष्य का रक्त पिया। इस पर कुमार का रोष भी प्रचण्ड होगया और उसने देवराज की उस भुजा पर, जिसकी अंगुलियाँ ऐरावत के अंकुश से कठोर हो गयी थीं और जिस पर देवों की महारानी शची के बनाये हुए मांगलिक चिह्न विद्यमान थे, अपने नाम से अंकित तीर आरोपित कर दिया। साथ ही कुमार ने मोर के पंख के समान आकृतिवाले एक वाण से इन्द्र की वज्रांकित ध्वजा को काट डाला। उससे तो देवराज को ऐसा अनुभव होने लगा, मानो देवताओं की श्री-ललना के केशों पर हाथ डाला गया हो। युद्ध की भीषणता और भी बढ़ गई। आकाश से विमानों पर बैठे हुए देवगण और पृथ्वी पर से सैनिक लोग उन दोनों विजय की इच्छा रखनेवाले वीरों के अद्भुत युद्ध को आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे। इन्द्र और रघु के धनुष से निकले हुए, क्रमशः नीचे बरसने और ऊपर जानेवाले तीरों से अन्तरिक्ष आच्छादित होगया। जैसे अपनी विद्युत् से लगाई जंगल की अग्नि को बुझाने में स्वयं बादल असमर्थ हो जाता है, उसीप्रकार अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करके भी देवराज कुमार को परास्त न कर सके। उसी-समय कुमार के धनुष से निकले हुए अर्द्धचन्द्रकार वाण

ने इन्द्र की तूफानी समुद्र के समान गम्भीर गर्जना करती हुई प्रत्यंचा को मुट्ठी के पास से काट दिया। तब तो देवराज का क्रोध अत्यंत उग्र होगया। वज्रधर ने धनुष को नीचे रख दिया और अपनी चोट से पर्वतों के पहलुओं को तोड़ डालने वाले, चमकते हुए प्रकाशपुञ्ज वज्र को हाथ में लिया। जब देवराज का वज्र रघु की छाती पर लगा, तो सैनिकों के आँसुओं के साथ कुमार भी क्षण भर के लिए पृथ्वी पर गिर गया, परन्तु अभी आँसू पूरी तरह पृथ्वी पर पहुंचने भी न पाये थे कि सैनिकों के गगनभेदी जयनादों के साथ रघु भी उठकर खड़ा होगया। कुमार के इस अपूर्व बल और साहस को देखकर इन्द्र का कोप शान्त होगया। मनुष्य अपने गुणों से ही ऊँचा पद प्राप्त कर सकता है।

तब संतुष्ट होकर वज्रपाणि ने रघु से कहा—

हे कुमार, मेरे जिस वज्र के आघात को चट्टानें भी नहीं सह सकतीं, उसे तूने सह लिया। मैं तेरे बल और साहस से प्रसन्न हुआ हूँ। बता घोड़े के अतिरिक्त तू क्या चाहता है? उससमय रघु का हाथ तूणीर पर था, जिसमें से सुनहली नोकवाला बाण आधा निकल चुका था और उसकी फलक से कुमार की अंगुलियाँ सुनहली हो रही थीं। देवराज की बात सुनकर कुमार ने हाथ को वहीं थाम लिया, और मीठे स्वर में इन्द्र से कहा—"हे प्रभो, यदि आप यज्ञ के अश्व को छोड़ना उचित नहीं समझते, तो मेरी प्रार्थना है कि विधिपूर्वक यज्ञ-समाप्ति पर मेरे पिता को यज्ञ के सम्पूर्ण फल का भागी बना दीजिये, ताकि अश्व के न लौटने पर भी यज्ञ सर्वांग-

सम्पन्न समझा जाय। एक कृपा और कीजिये कि इस सारी घटना का समाचार अपने दूत द्वारा महाराज तक ऐसे अवसर पर पहुँचा दीजिये, जब वह सभा में विराजमान हों।"

"ऐसा ही होगा"—कहकर देवराज स्वर्गलोक के लिए प्रस्थित हो गये और कुछ उदासचित्त से सुदक्षिणा का वीर पुत्र भी अपने घर की ओर लौटा। महाराज को सब समाचार इन्द्र के दूत से प्राप्त हो चुके थे। जब रघु घर पहुँचा तो महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त शीतल हाथों से उसके वज्र द्वारा आहत अंगों का स्पर्श किया।

इसप्रकार राजा दिलीप ने निन्यानवें यज्ञ पूर्ण करके मानो मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तक पहुँचने के लिए निन्यानवे सीढ़ियाँ तैयार कर लीं। राजा का चित्त सांसारिक झँझटों से विरक्त हो चुका था। रघुकुल की मर्यादा के अनुसार दिलीप ने अपने छत्र और चामर वीर पुत्र को सौंप दिये, और देवी सुदक्षिणा को साथ ले, तपोवन के वृक्षों की शीतल और शान्त छाया का आश्रय लिया।

४.

दिग्विजय

संध्या के समय, अस्ताचलगामी सूर्य द्वारा दिये गय तेज को प्राप्त करके जैसे आग अधिक उज्ज्वल हो जाती है, उसी-प्रकार अपने पिता से शासन का अधिकार प्राप्त करके रघु चमक उठा। उधर अन्य शासकों के हृदयों में, दिलीप के गौरव को देखकर प्रतिस्पर्धा की जो आग केवल सुलग रही थी, रघु के सिंहासनारूढ़ होने पर भड़क उठी। उस वीर ने पिता के सिंहासन पर और शत्रुओं के मस्तक पर एक ही समय में पैर रखा। राज्याभिषेक के समय जो छत्र रघु के सिर पर छाया गया, वह मानो साक्षात् लक्ष्मी ने अपने परोक्ष हाथों से धारण किया हो। जब चारण लोग उसकी स्तुति के गीत गाते थे, तब प्रतीत होता था कि उनकी वाणी के बहाने स्वयं सरस्वती उपस्थित हुई है। जैसे दक्षिण का वायु न बहुत शीतल होता है न बहुत गर्म, उसीप्रकार रघु प्रजा के लिए उचित दण्ड देने के कारण न अत्यन्त उग्र था और न बहुत ढीला। जब आम के पेड़ पर फल आ जाता है, तब लोग उसके बौर को भूल जाते हैं। रघु के गुणों से भी दिलीप की स्मृति प्रजा के हृदयों में हल्की होने लगी। युद्ध के क्षेत्र के समान

नीति के क्षेत्र में भी वह असाधारण प्रतिभा रखता था। उसके मन्त्री लोग जब कोई सलाह देते थे, तो वह पूर्वपक्ष ही रहता, निर्णायक उत्तरपक्ष रघु का ही होता था। जैसे प्रहर्षक होने के कारण निशानाथ चन्द्र और तेजस्वी होने के कारण सूर्य तपन कहलाता है, वैसे ही प्रजा के रंजन के कारण रघु का "राजा" नाम सार्थक था। यद्यपि उसकी भौतिक आंखें बिशालता के कारण कानों को छू रही थीं, परन्तु उसके असली नेत्र तो शास्त्र थे, जिससे वह सूक्ष्म समस्या की तह तक पहुँच जाता था।

इसप्रकार अपने पराक्रम और बुद्धिबल से उसने राज्य में शान्ति की स्थापना कर दी; मानो उसके बढ़ते हुए प्रताप पर साधुवाद देने के लिये कमलों की भेंट लेकर शरद्ऋतु के रूप में स्वयं राजश्री पृथ्वी पर उतर आई। बादल हट गये, आकाश स्वच्छ होगया, जिससे रघु का और सूर्य का प्रताप एक साथ निर्विघ्न रूप से दिशाओं में व्याप्त होने लगा। इन्द्र देवता ने वर्षभर के लिये अपने धनुष इन्द्रधनुष को खींच लिया, और रघु ने अपना धनुष हाथ में ले लिया। प्रजा की रक्षा के लिये वे दोनों ही धनुर्धारी बारी-बारी से तैयार रहते थे। शीतऋतु की रात में छिटकती हुई चांदनी और रघु के सदा प्रसन्न चेहरे को देखकर प्रजाजनों के हृदय प्रसन्नता का अनुभव करते थे। हंसों की पंक्तियों में, टिमटिमाते हुए तारों में, कुमुदिनी के फूलों में और नदियों के स्वच्छ जल में मानो उसके यश की श्वेत आभा छिटक रही थी। ईख की छाया में आराम करनेवाली खेतों की निश्चिन्त

निर्भय रखवालियाँ उस प्रजा के रक्षक के बच्चे-बच्चे तक फैले हुए यश का गान करती थीं। शीतऋतु में अगस्त्य के उदय से जल प्रसन्न होने लगा, पर रघु के अभ्युदय से शत्रुओं के मन कलुषित होने लगे। इसप्रकार पूरी सजधज के साथ आकर शीतऋतु ने नदियों को उथला कर दिया और रास्तों के कीचड़ को सुखाकर सुगम बना दिया, जिससे शक्ति के अभिलाषी रघु के हृदय में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा उत्पन्न हो गयी।

विजययात्रा का संकल्प कर लेने पर रघु ने अश्वमेध की मांगलिक विधि का आयोजन किया, जिसमें अग्निदेवता ने यज्ञ-ज्वालाओं की भुजाओं से उसे विजयी होने का आशीर्वाद दिया। उसके पश्चात् रघु ने राजधानी की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया, मार्ग की सुरक्षा के लिये राजभक्त और शक्तिसम्पन्न सेनायें नियुक्त कीं और गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त किया। तब उसने अपनी सर्वाङ्गसम्पन्न सेना की कमान सँभाली और दिग्विजय की यात्रा का डंका बजा दिया।

जैसे क्षीर समुद्र की लहरें दूध की फुआर से विष्णु भगवान् की पूजा करती हैं, उसीप्रकार नगर की वृद्ध महिलाओं ने लाजों की वर्षा करके विजययात्रा के समय उसका अभिनन्दन किया।

रघु ने दिग्विजय की यात्रा का आरम्भ पूर्वदिशा से किया। उसकी सेनाएँ जब ऊँची लहराती हुई ध्वजाओं से शत्रुओं को ललकारती हुई राजधानी से निकलीं, तब रथों के पहियों और मेघों के समान विशाल तथा काले हाथियों के पैरों

से उठी हुई धूल के कारण आकाश पृथ्वी के समान और पृथ्वी आकाश के समान प्रतीत होने लगी। राजा की मानवी सेना के साथ-साथ मानो एक और चतुरंगिणी सेना भी चली— आगे-आगे राजा का प्रताप, उसके पीछे सेना का सिंहनाद, फिर सेना से उठी हुई धूल और अन्त में रथादि। राजा के दृढ़ निश्चय और शक्ति के सामने मरुस्थलों में जल बहने लगा, बड़ी-बड़ी नदियाँ उथली हो गईं और बड़े-बड़े जंगल सपाट मैदान बन गये। पूर्व की ओर उमड़ती हुई सेना का नेतृत्व करता हुआ रघु ऐसे शोभायमान हो रहा था, जैसे महादेव के जटाजूट से बहती गंगा की धारा का प्रदर्शन करता हुआ भगीरथ। जैसे मस्त हाथी जंगल के जिस मार्ग से गुजर जाता है, वहाँ वृक्षों के बिखरे हुए फल, उखड़ी हुई जड़ें और टूटे हुए तने ही शेष दिखाई देते हैं, वैसे ही रघु जिन देशों से आगे बढ़ता गया, उसमें परास्त और झुके हुए राज-वंशों के खंडहर ही दृष्टिगोचर होते थे। पूर्वदिशा के देशों को जीतता हुआ विजेता रघु आगे ही आगे बढ़ता गया, यहाँ तक कि उसकी सेनायें नारियल के वनों से श्यामल समुद्र-तट पर जा पहुँचीं। अकड़कर खड़े होनेवाले पेड़ों का मानभंग करनेवाले उस सेनापति के सामने बेंत की भाँति सिर झुकाकर सुह्म देशवासियों ने अपनी प्राणरक्षा की। रघु ने और आगे बढ़कर नौकाओं की सहायता से युद्ध के लिए उद्यत बंग लोगों को पछाड़ा और गंगा की मध्यवर्ती धाराओं के द्वीपों में अपनी विजय-ध्वजायें गाड़ दीं। जैसे एक खेत से उखाड़कर दूसरे खेत में लगाने पर, उत्कृष्ट वासुमति धान के

पौधे बालों के बोझ से अधिक झुक जाते हैं, उसीप्रकार जब रघु ने बंगों को उखाड़कर फिर से जमा दिया तो उन्होंने रघु के चरणों तक झुककर अधीनता स्वीकार कर ली। यहाँ उसके मार्ग में कपिशा नाम की नदी आई। उस पर उसने हाथियों का पुल बनाया और उससे पार होकर उत्कल के राजाओं द्वारा दिखलाये हुये मार्ग से कलिंग देश की ओर प्रयाण किया। मार्ग में महेन्द्र पर्वत आया। जैसे हठीले हाथी को वश में लाने के लिये हाथीवान उसके मस्तक पर अंकुश आरोपित करता है, उसीप्रकार रघु ने महेन्द्र की चोटी पर अपने प्रताप की ध्वजा गाड़कर प्रभुत्व की स्थापना की। कलिंग देश के शासक ने हाथियों की सेना और शस्त्रास्त्रों से रघु का उसीप्रकार स्वागत किया, जैसे पंजों को काटने को आए इन्द्र का स्वागत पर्वतों ने शिलाओं से किया था। शत्रुओं के पैने बाणों की वृष्टि से राजा का जो स्नान हुआ, वही मंगल-स्नान बन गया। उससे प्रादुर्भूत विजय-श्री ने राजा के गले में विजय का हार पहना दिया। विजय प्राप्त करने के पश्चात् रघु के योद्धाओं ने महेन्द्र पर्वत पर ताम्बूलों के पत्तों के दोनों से नारियल की सुरा और कीर्ति—दोनों का एकसाथ पान किया। कलिंगराज को परास्त करके धर्मी विजेता ने उसका देश उसी को वापिस कर दिया। उसने केवल उसकी राज्यश्री का अपहरण किया, राज्य का नहीं। कलिंग-विजय के पश्चात् आशातीत सफलताओं से विभूषित रघु ने फलों से लदे हुए सुपारी के वृक्षों से शोभायमान समुद्रतट के रास्ते से दक्षिण की ओर प्रयाण

किया। मार्ग में कावेरी नदी पड़ी। राजा की सेना के मस्तक-जल से सुगन्धित होकर जब नदी का जल नदियों के स्वामी समुद्र की गोद में पहुँचा, तो वह शंकित-सा होगया।

दिग्विजय की इच्छा से आगे बढ़ता हुआ रघु मलयाद्रि की तराई में जा पहुँचा। वहाँ उसकी सेनाओं ने छावनी डाली, तो घबराए हुए हारीत पक्षी बांसों के घने जंगलों में भटक कर इधर-उधर उड़ने लगे।

सेना के घोड़ों ने इलायची के पौधों को रौंद डाला तो उससे सुगन्धि के जो रेणु आकाश में फैली वह मस्त हाथियों के स्वभावत: सुगन्धित मदवाले गण्डस्थलों पर पड़कर एकीभूत-होगई। पाँव के बन्धन को तोड़कर भागनेवाले हाथियों ने जब चन्दन के पेड़ों से अपनी गर्दन को रगड़ा, वहाँ साँपों के लिपटने से गड्ढे बने हुए थे, अत: तब उनके गले के बन्धन टूटे नहीं। जिस दक्षिण दिशा में जाकर सूर्य का तेज भी मन्द हो जाता है, रघु के वहाँ पहुँचने पर पाण्ड्य-जाति के लोग उसके प्रताप को न सह सके, और समुद्र तथा ताम्रपर्णी नदी से एकत्र किये हुए, अपने चिरसंचित यश के समान उज्ज्वल मोतियों की भेंट लेकर सेवा में उपस्थित हुये। आगे बढ़कर रघु ने दक्षिण दिशा के सह्य पर्वत में प्रवेश किया। परशुरामके द्वारा सह्य पर्वतसे दूर हटाया गया समुद्र भी, किनारे-किनारे जाने वाली रघु की सेनाओं के कारण पर्वत से लगा हुआ प्रतीत हो रहा था। विजेता की सेना के समीप आने पर घबराहट के कारण केरल की स्त्रियों को केसरादि फूलों से केशों का शृंगार करने की होश न रही तो सेनाओं की धूल ही

सिर के शृंगार का साधन बन गईं। केतकी के फूलों का रज, मुरला नदी का स्पर्श करनेवाले वायु के झोंकों द्वारा जब रघु की सेनाओं के वस्त्रों पर पड़ा तो उसने वहाँ इत्र-फुलेल का काम दिया। आगे बढ़ते हुए सैनिक और घोड़ों के कवचों की सम्मिलित ध्वनि इतनी ऊँची हुई कि राजताली जगल में गूंजती हुई हवा की ध्वनि उससे परास्त हो गई। पुन्नाग के फूलों पर मंडराते हुए भौंरे, खजूर के तने से बंधे हुए हाथियों के बहनेवाले मद की सुगन्ध से आकृष्ट होकर उनके गण्ड-स्थलों पर टूट पड़े। जिस समुद्र ने माँगने पर परशुराम को अपना किनारा खाली करके दिया था, उसने बिना माँगे ही अपने द्वीप के राजा द्वारा दिये गए कर के बहाने से रघु की सेवा में भेंट उपस्थित की। त्रिकूट पर्वत की चट्टानों पर रघु की सेना के मस्त हाथियों ने दाँतों से जो निशान बनाये, उनसे मानो वह पर्वत ही विजेता का जयस्तम्भ बन गया।

वहाँ से वह संयमी पारसीक लोगों को जीतने के लिए स्थल के मार्ग से रवाना हुआ—जैसे योगी इन्द्रिय नाम के शत्रुओं को तत्वज्ञान से जीतने के लिए सन्नद्ध होता है, जैसे बरसात के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में सूर्य की प्रातःकालीन किरणें पद्मों को कुम्हला देती हैं, उसीप्रकार रघु के प्रताप ने यवन स्त्रियों के सुरागन्ध वाले मुखकमलों को मुरझा दिया। पश्चिम के घुड़सवार योद्धाओं से उसका ऐसा घोर युद्ध हुआ कि धूल में लड़नेवालों का अनुमान धनुष की टंकार से ही किया जा सकता था। काली-काली मधुमक्खियों से सने हुए शहद के समान दीखनेवाले यवन लोगों के दढ़ियल चेहरों

को काट-काट कर उसने पृथ्वी को ढक दिया। अन्त में वे मुकुट उतारकर उसके चरणों में झुक गये। महापुरुषों का क्रोध तभी तक रहता है, जब तक दूसरा झुक न जाय। वहाँ रघु के विजयी योद्धाओं ने अँगूर के झुरमटों में बहुत उत्कृष्ट मृगछालाओं पर लेटकर और अंगूरी शराब पीकर अपनी थकान को उतारा।

उसके पश्चात् सूर्य के समान तेजस्वी रघु ने उत्तर दिशा के जल-सदृश निवासियों को सुखाकर नामशेष कर देने के लिए प्रयाण किया। काश्मीर में सिन्धु नदी के तट पर लोटकर विजेता के अश्वों ने अपनी थकान को दूर किया, और उससे उनके कन्धों पर जो केसर लग गया---उसे झकझोर कर उतार दिया। रघु ने हूण योद्धाओं को परास्त करके उनकी स्त्रियों को जो वैधव्य-दुःख दिया। वह रो-पीटकर लाल हुए उनके कपोलों से व्यक्त होता था। कम्बोज देश के निवासी विजेता के प्रताप को न सह सके और रघु की सेना के हाथियों के रस्सों से बँधने के कारण झुके हुए अखरोट के पेड़ों के साथ वे भी झुक गये। कम्बोज लोग बहुत-सा धन और देश के प्रसिद्ध घोड़ों की जो भेंट लेकर बार-बार रघु की सेवा में उपस्थित हुए उसे तो रघु ने अपने खजाने में प्रवेश दे दिया, परन्तु विजय से उत्पन्न होनेवाले अभिमान को हृदय में प्रवेश नहीं दिया।

कम्बोज को जीतने के पश्चात्, अश्वों के खुरों से उठे हुए गेरु आदि धातुओं के रज से शिखरों की ऊँचाई को मानो और अधिक बढ़ाते हुए, राजा रघु ने हिमालय पर चढ़ाई बोल

दी। सेनाओं के कोलाहल से जागे हुई गुफावासी सिंहों ने केवल गर्दन फेरकर बाहिर की ओर देखा, मानो कह रहे हों कि हम तुमसे निर्बल नहीं, जो डरें। भूर्जपत्रों की मर्मरध्वनि और बांसों के जंगलों की गूंज पैदा करनेवाले, गंगाजल के सम्पर्क से शीतल पवनों ने हिमालय की चोटियों पर रघु का स्वागत किया। उसके सैनिकों ने कस्तूरी के संसर्ग से सुगन्धित शिलाओं पर बैठकर और नमेरु वृक्षों की छाया में सुस्ताकर अपनी थकान को उतारा। वहाँ राजा की सेनाओं का पहाड़ी जातियों से युद्ध हुआ। उस युद्ध में फेंके गये बाणों और शिलाओं से जो संघर्ष हुआ उससे आग की चिनगारियां चारों ओर फैल रही थीं। रघु से परास्त होकर उत्सवसंकेत लोग अपने उत्सवों को भूल गये और किन्नरगण उसी के विजयगीत गाने लगे। पहाड़ी लोग जब बहुमूल्य रत्नों की भेंट लेकर राजा की सेवा में उपस्थित हुए, तब राजा ने हिमालय की और हिमालय ने राजा की शक्ति को ठीक-ठीक पहिचाना। आगे कैलास पर्वत आरम्भ होता था। उसे तो रावण जैसा राक्षस भी हिला देगा, मानो इसी विचार से रघु ने उसे छोड़ दिया और हिमालय से नीचे उतर आया।

उसके पश्चात् रघु ने लौहित्य नदी को पार किया। तब तो प्राग्ज्योतिष् का राजा और रघु के हाथियों के खूंटे बनने के कारण कालागुरु के वृक्ष एक साथ ही काँप गये। प्राग्ज्योतिष् का शासक विजेता के रथों से उठे हुए सूर्य को ढक देनेवाले मेघों को भी नहीं सह सका, सेनाओं को तो सहता ही क्या? आगे बढ़ने पर कामरूप के राजा ने मस्त हाथियों की

उन श्रेणियों की भेंट देकर देवताओं के राजा से भी अधिक पराक्रमशील रघु का स्वागत किया, जिनसे वह अन्य विरोधियों का मार्ग रोका करता था। उसने विजेता के चरणों की रत्नरूपी फूलों से पूजा की। इसप्रकार राज्यछत्र उतर जाने के कारण खुले हुए नरेशों के मस्तकों पर, अपने रथ से उठी हुई धूल का टीका लगाता हुआ रघु राजधानी को लौट आया। मेघों के समान सज्जन लोग जो कुछ लेते हैं, वह केवल देने के लिये ही। रघु ने भी विजय-यात्रा से लौटकर प्राप्त हुई अतुल सम्पत्ति का दान करने के लिए विश्वजित् यज्ञ का आयोजन किया।

रघु के विश्वजित यज्ञ में दूर-दूर देश के राजा एकत्र हुए। पराजित होने के कारण उनके हृदयों में जो थोड़ा-बहुत दुःख था, उसे विजेता ने मंत्रियों की सहायता से बढ़े-चढ़े आदर-सत्कार द्वारा शान्त कर दिया। यज्ञ के अंत में रघु से अनुमति प्राप्त करके राजा लोग अपने घरों को वापिस चले गये; जिससे उनके परिवारों की चिर-वियोग के कारण हुई चिन्ता दूर हो गई। विदा होते समय राजाओं ने रघु के रेखाध्वज, वज्र और छत्र जैसे चक्रवर्ती चिह्नों से युक्त चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार किया तो उनके किरीटों से गिरे हुए फूलों के पराग से रघु के चरणों की अंगुलियाँ गौर हो गईं।

: ५ :

विश्वजित् यज्ञ

जिस समय 'विश्वजित्' यज्ञ में सर्वस्व दान करने के कारण सम्राट् रघु का खजाना बिल्कुल खाली हो चुका था, उस समय वरतन्तु आचार्य का शिष्य कौत्स अपनी शिक्षा समाप्त करके गुरुदक्षिणा की खोज में अयोध्या पहुँचा। सोने के सब बर्तन दिये जा चुके थे, अतः रघु ने मिट्टी के बर्तन में अर्घ्य प्रस्तुत किया। अर्घ्य-पाद्य आदि से उस तपस्वी का सत्कार करके मानियों के प्रमुख सम्राट् रघु ने उसे आसन पर बिठाया और हाथ जोड़कर प्रश्न किया—

हे कुशाग्रबुद्धि मुनिवर, जैसे सारा संसार सूर्य से जीवन प्राप्त करता है, वैसे ही जिस मन्त्रवक्ताओं के अग्रणी ऋषिवर से तुमने सब विद्यायें प्राप्त की हैं, वह कुशल से तो हैं? देवताओं के अधिपति को हिलादेने वाली महर्षि की त्रिविध तपस्या के मार्ग में कोई रुकावटें तो नहीं आतीं?

शरीर, वाणी और कर्म द्वारा देवताओं के राजा के आसन को हिलादेने वाला जो त्रिविध तप महर्षि ने सञ्चित किया है, उसमें कहीं विघ्न-बाधायें तो उपस्थित नहीं होतीं?

शीतल छाया द्वारा थकान उतारनेवाले उन आश्रम के

वृक्षों का, जिन्हें आश्रमवासियों ने आलवाल बनाकर तथा सब उपायों से सन्तान की तरह पाल-पोस कर बड़ा किया है, वायु आदि के उपद्रवों से हानि तो नहीं पहुँचती ?

हरिणियों की जिस सन्तति को मुनि लोग अपने बच्चों से भी अधिक प्रेम करते हैं, जिनका जन्म मुनियों की गोद में ही होता है, जो यज्ञादि के निमित्त से भी अलग नहीं किये जाते, कुशल से तो हैं ?

जिन पवित्र जलों से आप लोग दैनिक स्नानादि करते हैं, जिसकी अंजलियों से पितरों का तर्पण होता है, और जिनकी रेतीली तटभूमि शेष अन्न के षष्ठभाग पर लगे हुए राजकर के चिह्नों से अंकित है, वे जल उपद्रव रहित तो हैं ?

जिन से आप अपना जीवन-निर्वाह, और समय-समय पर आनेवाले अतिथियों का पूजन करते हैं, उन नीवार श्यामाक आदि अन्नों को भुस की खोज में आनेवाले गौ-भैंस आदि पालतू पशु तो नष्ट नहीं करते ?

महर्षि ने विद्या की समाप्ति पर आपको गुरुकुल से प्रसन्नतापूर्वक घर जाने की अनुमति तो दे दी है ? क्योंकि अब वह समय आ गया है, जब आप अन्यों का उपकार करने की योग्यता के कारण ज्येष्ठ आश्रम—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

केवल आपके आने से ही मेरा मन सन्तुष्ट नहीं हुआ, मैं उत्सुक हूँ कि आपके किसी आदेश का पालन भी करूँ। आपने मुझ पर अनुग्रह किया है कि अपने गुरु की आज्ञा से अथवा स्वयं जंगल से पधारकर मुझे कृतार्थ होने का अवसर दिया है।

वरतन्तु मुनि के शिष्य कौत्स ने अर्घ्य के पात्र को देखकर ही अनुमान लगा लिया था कि रघु सर्वस्व दान कर चुका है। राजा की उदारवाणी सुनकर भी कौत्स की आशा हरी नहीं हुई और वह बोला—

हे राजन्, आश्रम में सब प्रकार से कुशल-मंगल है। शासन की बागडोर आपके हाथ में रहते प्रजा को कष्ट हो ही कैसे सकता है? जब सूर्य दमक रहा हो, तब प्राणियों की आँखों को अंधेरा कैसे ढक सकता है?

हे राजन्, पूज्यों के प्रति भक्ति की भावना रखना तुम्हारे कुल की प्रथा है। अपनी विशालहृदयता के कारण तुमने अपने पूर्व-पुरुषों को भी मात दे दी है। मुझे इतना ही दुःख है कि मैं समय बीत जाने पर अपनी अभ्यर्थना लेकर यहां पहुँचा हूँ।

हे नरेन्द्र, वनवासियों द्वारा अन्न निकाल लेने पर जैसे नीवार का खोखला स्तम्भ (सूखा पौदा) शोभायमान होता है, सत्पात्रों को सर्वस्व दान देकर तुम वैसे ही शोभायमान हो रहे हो।

चक्रवर्ती साम्राज्य प्राप्त करके आज दान के कारण तुम्हारी यह धनहीनता शोभाजनक ही है। देवताओं द्वारा अमृत पिये जाने पर चन्द्रमा की क्षीणता, उसकी वृद्धि से कहीं अधिक प्रशंसनीय होती है।

सो राजन्, मैं किसी अन्य स्थान से गुरुदक्षिणा प्राप्त करने का यत्न करूँगा। मुझे तो इस समय इसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं है। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। बरसकर खाली

हुए बादल से तो चातक भी पानी नहीं मांगता ।

यह कहकर जब कौत्स विदा होने लगा तो राजा ने उसे रोककर पूछा—हे विद्वन्, आप यह तो बताइये कि गुरु की सेवा में आपको क्या वस्तु कितनी राशि में भेंट करनी है ?

विश्वजित् यज्ञ को सफलतापूर्वक पूर्ण करके भी अभिमान से शून्य, वर्णाश्रमों की रक्षा करनेवाले उस छत्रपति के प्रश्न को सुनकर वह स्नातक रुक गया और बोला—

विद्याध्ययन समाप्त करके मैंने महर्षि से निवेदन किया था कि मुझे गुरुदक्षिणा भेंट करने की आज्ञा दी जाय । गुरु ने मेरी चिरकाल तक की हुई भक्तिपूर्ण सेवा को ही पर्याप्त समझा । फिर भी मैं गुरुदक्षिणा का आग्रह करता ही गया । इससे असन्तुष्ट होकर महर्षि ने कहा कि यदि तेरा ऐसा ही आग्रह है तो ग्रहण की हुई चौदह विद्याओं के बदले में चौदह करोड़ मुद्रायें गुरु-दक्षिणा के रूप में उपस्थित कर । हे राजन्, पूजा के मृण्मयपात्रों से मैंने जान लिया है कि तुम्हारा केवल 'प्रभु' नाम ही शेष है, और मेरी मांग बहुत बड़ी है, इस कारण मैं तुमसे आग्रह करने का साहस नहीं कर सकता ।

वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण की इसप्रकार की बात सुनकर तेजस्वी और विद्वान् सम्राट् ने निवेदन किया—

भगवन्, विद्यारूपी समुद्र को पार करके एक स्नातक गुरुदक्षिणा की खोज में रघु के पास आया और निराश होकर किसी दूसरे दानी के पास चला गया, यह अपकीर्ति मेरे लिए एक नयी वस्तु होगी जो मुझसे सहन नहीं हो सकेगी । अतः आप दो-तीन दिन तक मेरे यज्ञगृह में चतुर्थ अग्नि की भांति

आदरपूर्वक निवास करने का अनुग्रह करें। इस बीच में मैं आपकी अभीष्ट धनराशि जुटाने का यत्न करता हूँ।

रघु के वचन को अटल प्रतिज्ञा के समान मानकर कौत्स प्रसन्नतापूर्वक रुक गया। इधर यह सोचकर कि पृथ्वी का सार खेंचकर तो मैं दान कर चुका हूँ, राजा ने कैलास के स्वामी कुबेर से अभीष्ट धनराशि लेने का संकल्प किया। जैसे वायु की सहायता प्राप्त होने पर अग्नि की गति अमोघ हो जाती है, उसीप्रकार वसिष्ठ मुनि के वरदान से रघु के रथ की गति न समुद्र में रुकती थी, न आकाश में मन्द होती थी और न पर्वतों पर ढीली पड़ती थी। उस रात रघु शस्त्रों से सुसज्जित रथ में ही सोया, मानो वह प्रातःकाल अपने किसी साधारण सामन्त को जीतने के लिए प्रयाण करनेवाला हो। जब वह प्रातःकाल सोकर उठा तो कोषगृह के रखवालों ने सूचना दी कि आज रात कोषगृह में आकाश से सोने की वर्षा हो गयी है। वह धनराशि इतनी थी कि मानो बिजली की चोट खाकर सुमेरू पर्वत की चट्टान टूट पड़ी हो। रघु ने वह सम्पूर्ण धन कौत्स की सेवा में भेंट कर दिया। अयोध्या के निवासी यह दृश्य देखकर चकित और कृतकृत्य हो रहे थे कि याचक गुरु-दक्षिणा की मात्रा से अधिक लेने से इन्कार करता था, और दाता कुबेर से प्राप्त समस्त धनराशि देने पर तुला हुआ था।

राजा ने वह धनराशि सैंकड़ों ऊंटों और खच्चरों पर लादकर कौत्स के सुपुर्द करते हुए झुककर प्रणाम किया। सन्तुष्ट होकर विद्वान् ब्राह्मण ने राजा को आशीर्वाद दिया—राजन्, तुम जैसे प्रजा का पालन करनेवाले शासक के लिए

पृथ्वी कामधेनु हो, यह तो स्वाभाविक ही है। परन्तु तुम्हारा प्रभाव अचिन्तनीय है, जिस ने आकाश को भी दुह लिया। संसार की सब विभूतियां तुम्हें प्राप्त हैं, अन्य जो भी शुभ-कामना की जायगी वह पुनरुक्तिमात्र होगी। इस कारण मेरा इतना ही आशीर्वाद है कि जैसे तुम्हारे योग्य पिता ने तुम्हें प्राप्त किया था वैसे ही तुम भी अपने अनुरूप पुत्र प्राप्त करो।

इसप्रकार आशीर्वाद देकर गुरुदक्षिणा के साथ ब्राह्मण गुरु के पास चला गया। जैसे संसार सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है, वैसे राजा ने भी भगवान् की दया से पुत्ररत्न प्राप्त किया।

महारानी ने ब्राह्ममुहुर्त्त में स्कन्द के समान तेजस्वी कुमार को प्राप्त किया। इस कारण सम्राट् ने उसका नाम ब्रह्मा के नाम पर 'अज' रखा।

अज में वही तेजस्वी रूप, वही बल और वही स्वाभाविक उदारभाव था। कुमार अपने पिता से उसीप्रकार अभिन्न था, जैसे दिये से जला हुआ दिया। जब गुरुओं से विधिपूर्वक प्राप्त की हुई शिक्षा और युवावस्था के प्रभाव से अज पूर्णरूप से सुन्दर और गम्भीर हो उठा, तब यद्यपि राज्यश्री उसके गले में हार पहिनाने को उत्सुक थी, तो भी लज्जाशील कन्या की तरह पिता की अनुमति की प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय विदर्भ के राजा भोज के विद्वान् दूत ने रघु के पास आकर निवेदन किया कि राज-कुमार अज को पुत्री इन्दुमती के स्वयंवर में भाग लेने को भेजिये। सम्बन्ध उत्तम है और कुमार की अवस्था विवाह के

योग्य हो गई है। यह विचारकर राजा ने अज को सेनाओं के साथ धन-धान्य से भरी हुई विदर्भ देश की राजधानी की ओर भेज दिया। मार्ग में युवराज ने जहां पड़ाव किये, वहाँ राजाओं के योग्य बहुमूल्य तम्बुओं के महल बनाये गये थे, जिनमें नगरों से लाकर उत्तमोत्तम सामग्री इकट्ठी की गयी थी, और जिन्हें वाटिका और विहारस्थानों से सुखकारी बनाया गया था। उसका एक पड़ाव नर्मदा नदी के तीर पर हुआ, जहां मार्ग की धूल से सनी हुई सेनाओं को नदीजल से आर्द्र, और नक्तमाल के स्पर्श से ठण्डे पवन से शान्ति प्राप्त हुई।

जब नर्मदा के तट पर अज का डेरा पड़ा हुआ था, तब एक जंगली हाथी, जिसके गण्डस्थल जल से धुल जाने के कारण निर्मल हो गये थे, परन्तु पानी के ऊपर मंडराते हुए भौंरों को देखकर यह सूचित होता था कि पानी में जाने से पूर्व उसके मस्तक से मद बह रहा था, नदी के जल से निकलता दिखाई दिया। उसके मद की तीव्र बास से परास्त हुए सेना के हाथी, हाथीवानों के हाथ से निकलने लगे। उसके भय से सेना के वाहन रस्सी तुड़ाकर भागने लगे। जिससे रथ उलटकर टूटने लगे और सिपाही लोग स्त्रियों की रक्षा में व्यस्त हो गये। इस लोकप्रथा का आदर करते हुए कि जंगली हाथी राजा के लिए अवध्य है, अज ने केवल उसे रोकने के लिए धनुष की प्रत्यंचा को हल्का-सा खैंचकर उसके कुम्भस्थल पर तीर मारा। आश्चर्य से चकित सेनाओं ने देखा कि तीर से विद्ध होकर उस हाथी का रूप बदल गया, और वह चमचमाते तेज के मण्डल से घिरे हुये आकाशवासी गन्धर्व के रूप में दिखलाई देने लगा।

उसने पहले राजकुमार पर कल्पद्रुम के फूलों की वर्षा की, और फिर निवेदन किया—

हे राजकुमार, मैं प्रियदर्शन नाम के गन्धर्वराज का पुत्र प्रियंवद हूँ। मेरे दुरभिमान से रुष्ट होकर मतंग मुनि ने मुझे शाप दे दिया, जिससे मुझे हाथी का रूप धारण करना पड़ा शाप मिलने पर मैंने अनुनय-विनय किया तो वह शान्त हो गये। पानी चाहे आग और धूप के संयोग से गर्म हो जाये, परंतु वह स्वभाव से तो शीतल ही है। शान्त होकर तपस्वी ने शाप को कम करते हुए कहा कि इक्ष्वाकुवंश का राजकुमार अज जब बाण से तेरे मस्तक को छेद देगा, तब तुझे अपना शरीर वापिस मिल जायगा। सो तुमने मुझे शाप से छुड़ाकर मुझ पर यह बड़ा उपकार किया। इसके बदले में यदि मैं कोई प्रत्युपकार न करूँ, तो मेरा निज रूप में आना व्यर्थ ही होगा। हे मित्र, मेरे पास सम्मोहन नाम का गन्धर्व अस्त्र है, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शत्रु की हिंसा नहीं करनी पड़ती और जीत हाथ में आ जाती है। यह अस्त्र मैं तुम्हें देता हूँ। इसमें कोई लज्जा की बात नहीं है। तुमने तीर का प्रहार करते हुए मुझ पर मुहूर्त भर जो दया का भाव प्रदर्शित किया, उसने मेरे हृदय में अपनापन पैदा कर दिया है। कृपया इस भेंट को लेने से इन्कार न करना।

राजकुमार ने प्रियंवद की बात स्वीकार कर ली, और पूर्वाभिमुख हो, नर्मदा के जल का आचमन करके सम्मोहनास्त्र ग्रहण किया। इसप्रकार दैव ने उन दोनों को मार्ग में मिला-कर मित्र बना दिया। अस्त्र-ग्रहण के पश्चात् एक चैत्ररथ

नाम के गन्धर्वों के निवासस्थान की ओर चला गया, और दूसरे ने उत्तम शासन के कारण सुखी और समृद्ध विदर्भदेश की दिशा की ओर प्रस्थान किया।

जब अज विदर्भ की राजधानी के पास पहुँचा, तो जैसे लहरों की भुजाओं को बढ़ाकर समुद्र चन्द्रमा का स्वागत करता है, वैसे ही विदर्भराज ने प्रसन्नहृदय से उसका स्वागत किया। विदर्भराज भोज ने नगर-प्रवेश के समय ऐसी नम्रता से व्यवहार किया, जिससे सब अभ्यागत लोगों ने अज को गृहस्वामी और भोज को अतिथि समझा।

वहाँ पहुँचकर अधिकार पुरुष राजकुमार को जिस नव-निर्मित और सुन्दर राजमहल में ठहराने के लिए ले गये, उसके पूर्व द्वार पर जल से भरे हुए घड़े स्थापित किये गये थे। उस भवन में अज ऐसा शोभायमान हुआ मानो साक्षात् कामदेव युवावस्था में निवास कर रहा हो।

रात्रि के समय राजकुमार को बहुत मीठी नींद आयी। उषाकाल में वैतालिक लोगों ने मधुर और प्रगल्भ स्तुतियों द्वारा उसका उद्बोधन किया। उन्होंने कहा—रात समाप्त हो गयी। हे बुद्धिमानों के शिरोमणि! अब शैय्या को छोड़िये। इस पृथ्वी का बोझ विधाता ने दो कन्धों पर रखा है। एक कन्धा तुम्हारे सदा जागरूक पिता का है, और दूसरा तुम्हारा। देखो, अभी भगवान् भास्कर आकाश में अवतीर्ण भी नहीं हुए कि उनके सारथि अरुण ने अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर दिया। ठीक भी है, हे वीर, जब तुम मैदान में उतर आओगे, तो तुम्हारे गुरु को हथियार उठाने की

क्या आवश्यकता है। राजकुमार, कल सायंकाल तैयार किये गये फूलों के हार बिखर रहे हैं, दीपक की ज्योति मन्द पड़ गई है, और पिंजर में बन्द तुम्हारा सुग्गा हमारे प्रबोध वाक्यों को मीठे गले से दोहरा रहा है। अब उठो।

इसप्रकार स्तुतिवाक्यों से अज की नींद टूट गयी और वह बिस्तर छोड़कर उठ बैठा। उठकर शास्त्रोक्त रीति से उसने नित्यकर्मों का अनुष्ठान किया। कुशल परिचारकों ने उसे सभा के योग्य वेषभूषा से परिष्कृत किया, जिसके पश्चात् वह नियत समय पर स्वयंवर के मण्डप की ओर प्रस्थित हुआ।

६.

इन्दुमती का स्वयंवर

स्वयंवर के मण्डप में पहुँचकर राजकुमार ने सुन्दर वेष-वाले क्षत्रियों को विमान पर आरूढ़ देवताओं के समान शोभायमान देखा। राजाओं ने जब कामदेव के सदृश सुन्दर अज को देखा तो उनके मन में इन्दुमती की ओर से निराशा उत्पन्न हो गई। जैसे शेर का बच्चा शिलाओं पर चरण रखता हुआ पर्वत की चोटी पर चढ़ जाता है, वैसे ही सम्राट् रघु का राजकुमार भी शानदार सीढ़ियों से होकर राजा भोज द्वारा निर्दिष्ट सिंहासन पर विराजमान हो गया। सिंहासन रत्नों से जगमग हो रहा था और उस पर बहुमूल्य रंग-बिरंगे कालीन बिछे हुए थे। उस पर आसीन कुमार ऐसे शोभायमान हो रहा था, जैसे मोर की पीठ पर बैठा हुआ सेनानी गुह। जैसे अनेक मेघों में भिन्न-भिन्न रूप से एक ही बिजली दमकती दिखाई देती है, वैसे ही उन उपस्थित नरेशों में मानो एक ही राज्यश्री अनेक रूपों में छिटक रही थी। बहुमूल्य आसनों पर विराजमान उन राजाओं की श्रेणी में सम्राट् रघु का कुमार कल्पवृक्षों में पारिजात के समान देदीप्यमान हो रहा था। जब उपवन में कोई मदमस्त हाथी आ जाये, तो गन्ध

से खिचे हुए भौंरे फूलों को छोड़कर उसी की ओर खिच जाते हैं। नगरवासियों की आँखें भी अज के पहुंचने पर सब क्षत्रियों को छोडकर उसी की ओर आकृष्ट हो गयीं।

इसप्रकार सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं के एकत्र हो जाने पर वंश-परम्परा से अभिज्ञ बन्दिजनों ने उनका अभिनन्दन किया। धूपबत्तियों के जलने से उठा हुआ धुंआ पताकाओं की चोटियों को छूने लगा, और नगर के समीप उपवनों में रहनेवाले मोरों को नचा देने वाला प्राभातिक शंख आकाश को गुंजाने लगा। मंगलाचरण समाप्त होने पर, मनुष्यों द्वारा उठाई जाने वाली चौकोर पालकी में परिजनों द्वारा घिरी हुई, पति के वरण की इच्छा रखनेवाली स्वयंवर-वेषधारिणी राजकुमारी इन्दुमती ने मंडप के राजमार्ग में प्रवेश किया। सैंकड़ों आँखों की एक लक्ष्य, विधाता की उस अद्भुत रचना के सम्मुख आने पर सब नरेश अन्तःकरणों से उसके समीप जा पहुँचे, सिंहासनों पर तो केवल उनके शरीर ही रह गये।

तब राजवंशों के इतिहास से परिचित और पुरुष के समान प्रगल्भ प्रतिहारी सुनन्दा इन्दुमती को मगधदेश के राजा के समीप ले जाकर बोली—यह मगधदेश का राजा परन्तप है। जैसा नाम वैसे गुणोंवाला है। शत्रुओं का काल है, शरणार्थियों को शरण देनेवाला है और स्वभाव से गम्भीर है। प्रजा का रंजन करने के कारण इसने यश प्राप्त किया है। शासक तो अनेक हैं, परन्तु भूमि को राजन्वती कहलाने का सौभाग्य इसी से प्राप्त है। आकाश में अनगिनत ग्रह—नक्षत्र हैं, परन्तु रात्रि चन्द्र के कारण ही उजली समझी जाती है।

इस राजा के द्वारा यज्ञों में निरन्तर निमन्त्रित होने के कारण इन्द्र को बहुत समय तक स्वर्गलोक से अनुपस्थित रहना पड़ता था। फलतः पति-वियोग में महारानी शची के सुन्दर केश कपोलों तक लटक गये और मन्दार पुष्पों से शून्य हो गये है। यदि तुम चाहती हो कि यह श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारा पाणिग्रहण करे, तो पुष्पपुर में प्रवेश के लिए उद्यत हो जाओ, जहाँ प्रवेश के समय नगर की सुन्दरियां महलों के झरोखों में बैठकर तेरे दर्शन से अपने नेत्रों को आनन्दित करेंगी।

सुनन्दा के वचन सुनकर इन्दुमती ने मुंह से तो कोई उत्तर नहीं दिया, केमल परंतप की ओर देखकर, हल्का-सा प्रणाम कर दिया, जिसका अभिप्राय था कि नहीं।

जैसे वायु के वेग से उठी हुई जल की लहर मानस सरोवर की राजहंसी को एक कमल से दूसरे कमल के पास पहुंचा देती है, उसीप्रकार वह दौवारिक सुनन्दा राजकुमारी को परंतप के पास से हटाकर दूसरे राजा के समीप ले गई और बोली—

यह अंगदेश का राजा है। अप्सरायें इसके यौवन पर लट्टू हैं। प्रसिद्ध महावतों द्वारा सधाए हुए हाथियों की विभूति के कारण यह ऐरावत के स्वामी इन्द्र के सदृश ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा है। इसके पराक्रम ने, पराजित शत्रुओं की स्त्रियों के गले में मोतियों के समान स्थूल आंसुओं की मालायें डालकर बिना सूत्र के ही हार पहिना दिये हैं। श्री और सरस्वती स्वभाव से एक-दूसरे के संग नहीं रहतीं, इसने अपने गुणों से दोनों को वश में कर लिया है। शरीर के सौन्दर्य

और सत्य तथा प्रियवाणी के कारण हे इन्दुमति, तुम ही इसके योग्य हो।

सुनन्दा के वाक्य की समाप्ति पर इन्दुमति ने अंगराज पर से आँख हटाकर कहा—आगे चल! इससे यह न समझना चाहिए कि अंगराज सुन्दर नहीं था, और न ही यह बात थी कि इन्दुमती में पहिचानने की शक्ति न हो। तो भी इन्दुमती उसे छोड़ गई। संसार में सबकी रुचि भिन्न-भिन्न है।

उससे आगे सुनन्दा इन्दुमती को नवोदित चन्द्र के समान सुन्दर और आकर्षक अवन्तिनाथ के सामने ले गई, और कहने लगी—

यह विशाल वक्षःस्थल और संकुचित कटिभाग से सुशोभित महाबाहु अवन्ति का शासक है। इसके तेजस्वी शरीर को देखकर प्रतीत होता है कि विधाता ने सूर्य को चक्र पर चढ़ाकर इसकी रचना की है। इसकी विजय-यात्रा में सेना के घोड़ों की टाप से उठी हुई धूलि शत्रुओं के मुकटों की मणियों पर बैठकर, इसके पहुँचने से पूर्व ही उन्हें आभा-हीन कर देती है। यह महाकाल के निवासी भगवान् चन्द्र-मौलि महादेव के समीप ही रहता है, इसकारण अँधेरी रातों में भी यह चाँदनी से चमकती हुई रातों का अनुभव करता है। यदि इस नौजवान राजा के साथ, सिप्रा नदी के जलों का स्पर्श करनेवाले वायु से प्रकम्पित उद्यानों में विहार करने का विचार हो, तो हे सुन्दर राजकुमारि, मुझे बता दो।

अवन्तिनाथ अपने तेज से मित्ररूपी पद्मों को विकसित करनेवाला, और शत्रुरूपी कीचड़ को सुखा देनेवाला होने के कारण सूर्य के समान तेजस्वी था। परन्तु जैसे सुकोमल कुमुदिनी उसे पसन्द नहीं करती, वैसे ही इन्दुमती का हृदय भी उसकी ओर नहीं झुका। तब सुनन्दा इन्दुमति को आगे ले जाकर अनूपराज का परिचय देने लगी—

ब्रह्मज्ञानी राजा कार्तवीर्य का नाम तुमने सुना होगा। जब वह संग्राम–भूमि में उतरा था, तब शत्रु उसे सहस्रबाहु-सा अनुभव करते थे। उसनें अठारहों द्वीपों में अपने यज्ञों के यूथ गाड़ दिये थे। प्रजारंजन के कारण 'राजा' यह विशेषण उसमें असाधारण रूप से अन्वर्थक जँचता था। प्रजा पर उसका ऐसा आतंक था कि मन में अपराध का विचार आते ही धनुर्धारी राजा की मूर्ति मन के सामने आजाती और मानसिक अपराध भी रुक जाता था। जिस रावण ने इन्द्र को भी जीत लिया था, उसे राजा कार्तवीर्य के कारागृह में तब तक बन्दी रहना पड़ा था, जब तक राजा का अनुग्रह नहीं हुआ। कारागृह में रावण की भुजायें धनुष की प्रत्यंचा से बंधी हुई थीं, और मुखों से निरन्तर जोर-जोर के सांस निकल रहे थे। उसके वंश में वेदवेत्ताओं की सेवा करनेवाले इस 'प्रतीप' नामक राजा ने जन्म लिया है, जिसने अपनी दृढ़ता के कारण श्री का चंचलता का अपयश धो दिया है। इस तपस्वी ने तपस्या द्वारा अग्निदेवता को प्रसन्न करके सहायता का वर प्राप्त किया है। उसके प्रभाव से क्षत्रियों के संहार-कर्ता परशुराम के परशु की धारा को यह कमलपत्र की धारा

से भी अधिक कोमल समझता है। यदि महिष्मती नगरी की चहारदीवारी के चारों ओर कमरबन्द की तरह लिपटी हुई और केशवेणि के समान लहरें खाते हुए जलप्रवाह से सुन्दर रेखा नदी को देखने की इच्छा है, तो तुम इस राजा की गृहलक्ष्मी बन जाओ।

वह देखने में सुन्दर राजा भी इन्दुमती को पसन्द नहीं आया। बादलों के हट जाने से निर्विघ्न चमकने वाला सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा भी कमलिनी को खिजाने में समर्थ नहीं होता।

तब वह अन्तःपुर की रक्षिका सुनन्दा, राजकुमारी को आचार की शुद्धता के कारण माता और पिता दोनों वंशों की ख्याति को चमकाने वाले, देश-देशान्तर में प्रसिद्ध शूरसेन देश के राजा सुषेण के समीप ले जाकर बोली—मुनियों के आश्रम में जैसे सिंह और गौ, स्वभाव से विरोधी जीव आपस का विरोध छोड़ देते हैं वैसे ही नीप वंश के अंकुर इस यज्ञ-परायण राजा में इकट्ठे होकर अनेक परस्पर विरोधी गुणों ने विरोध-भाव छोड़ दिया है। इस राजा की जो कान्ति अपने घर में चांद की चाँदनी की तरह शीतल होकर फैल रही है वही परास्त होने के कारण सुनसान हुए शत्रुओं के घरों में असह्य तेज बनकर चमकती है। यमुना का जल अन्य सब स्थानों पर काला है, परन्तु इस राजा की नगरी मथुरा के पास जब राजपरिवार की स्त्रियाँ उसमें स्नान करती हैं, तो उनके वक्ष पर लगे चन्दनके कारण वह धौला होजाता है, जिससे प्रतीत होने लगता है कि मानो वहीं यमुना और गंगा का संगम हो गया है। गरुड़ से डरे हुए यमुना-तटवासी कालियसर्प के द्वारा दी

हुई मणि को छाती पर धारण करके यह राजा सुषेण शोभा में कौस्तुभधारी कृष्ण को भी मात दे रहा है। हे राजकुमारी, यदि तुम कुबेर की बाटिका से भी अधिक सुन्दर वृन्दावन में कोमल पल्लवों से ढकी हुई पुष्पशैय्या पर विश्राम करने का विचार रखती हो तो अपनी यौवन-श्री इस युवा को समर्पित करो। तुम वहाँ वर्षाॠतु में, गोवर्धन पर्वत की सुन्दर कन्दराओं में, जल-कणों से भीगे हुए पहाड़ी फूलों से सुगन्धित शिलातलों पर, मोरों का मनोहारी नाच देखोगी।

जैसे समुद्र की ओर बहनेवाली नदी मार्ग में आये हुए ऊँचे पर्वतों को लाँघ जाती है, वैसे ही इन्दुमती उस वीर राजा को भी छोड़कर आगे चली गई।

आगे कलिङ्ग के राजा हेमाङ्गद का आसन था। उसकी भुजाओं पर केयूर शोभायमान हो रहा था। सुनन्दा उसे लक्ष्य करके इन्दुमती से बोली—

महेन्द्र पर्वत के समान विशाल और दृढ़ यह राजा महेन्द्र-पर्वत और समुद्र का स्वामी है। जब इसकी सेनायें विजय-यात्रा के लिए चलती हैं, तब मद की धारा बहाते हुए हाथी उसके आगे-आगे चलते हैं, मानो नदियों को साथ लिए महेन्द्र पर्वत स्वयं मार्ग-प्रदर्शन कर रहा हो। इस धनुर्धारी की भुजाओं पर निरन्तर धनुश्चालन के कारण प्रत्यंचा के निशान पड़ गये हैं, मानो इसके मारे गये शत्रुओं की स्त्रियों के कज्जल सहित आँसुओं की धाराओं के चिन्ह हों। इसके प्रासाद के नीचे—फैला हुआ समुद्र, प्रातःकाल प्रासाद के रोशनदान में से दिखाई देती हुई लहरों की गम्भीरध्वनि से इसे जगा देता है, जिससे

अन्य किसी प्राभातिक वाद्य की आवश्यकता नहीं रहती। इसके साथ तुम ताड़ के पत्तों के मर्मरशब्द से युक्त समुद्र तटों पर विहार करो, जहाँ अन्य द्वीपों से उड़ाकर लाये हुए लवङ्ग पुष्परजों से सुगन्धित वायु तुम्हारे पसीने की बूँदों को सुखा देगी।

जैसे दैव के प्रतिकूल होने पर कुशल से कुशल नीतिज्ञ राजलक्ष्मी को अपने अनुकूल नहीं बना सकता, वैसे ही सुनन्दा के बहुत लुभानेवाले वाक्य भी इन्दुमती को महेन्द्र की ओर आकृष्ट न कर सके। सुनन्दा इन्दुमती को आगे ले गई, जहाँ सुन्दरता में देवताओं के समान उरग नामक नगर का राजा विराजमान था। वह बोली—राजकुमारि, इधर देखो, यह पाण्डुदेश का राजा पाण्ड्य है। इसकी चन्दन से सुशोभित छाती पर लम्बे लटकते हुए हार ऐसे दमक रहे हैं मानो प्रातःकाल की सूर्य-किरणों से लाल-लाल दीखनेवाली हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों से गिरता हुआ जल-निर्झर हो। विन्ध्यपर्वत को सूर्य के मार्ग में अड़ने से रोकनेवाले तथा समुद्र को सुखाकर भर देनेवाले ऋषि अगस्त्य अश्वमेध की समाप्ति पर स्नान से निवृत्त हुए इस यशस्वी क्षत्रिय से प्रेमपूर्वक कुशल समाचार पूछने आते हैं। अभिमान से भरा हुआ लङ्कापति रावण जब इन्द्रलोक को जीतने के लिए उत्तर की ओर जाने लगा, तब इस आशङ्का से कि कहीं यह पीछे जनस्थान प्रदेश पर अधिकार न जमा ले, वह पाण्ड्य से सन्धि करने के लिए बाधित हुआ था। हे राजकुमारि, इस महाकुलीन राजा का पाणिग्रहण करके तुम रत्नों की लड़ी से

सुभूषित समुद्ररूपी कमरबन्दवाली दक्षिणदिशा की सपत्नी बन जाओगी। यदि तुम पाण्ड्य का वरण करो तो तुम्हें मलय पर्वत के ताम्बूल की बेलों द्वारा आलिङ्गित, सुपारी, इलाइची आदि की लताओं द्वारा परिवेष्टित चन्दनों और तमाल के पत्रों से बने हुए आस्तरणों से अलंकृत प्रदेशों में बिहार करने का अवसर मिलेगा। नील कमल के समान नीली छविवाला यह राजकुमार और रोचना के सदृश गोरे रंग की तुम हो। जैसे बिजली और काले बादल की शोभा एक-दूसरे से बढ़ती है, उसीप्रकार तुम्हारी भी बढ़ेगी।

सुनन्दा ने पाण्ड्य के सम्बन्ध में जितने उपदेश दिये, इन्दुमती के हृदय पर उनमें से एक का भी प्रभाव न पड़ा। सूर्य के आदर्शन से बन्द हुए नलिनी के फूल को खोलने में चन्द्र की किरणें कभी समर्थ नहीं होतीं। वह पतिवरा राजकुमारी जलती हुई दीपशिखा के समान जिस-जिस राजा के पास से गुजरती जाती थी, राजमार्ग के दोनों ओर बने हुए विशाल भवनों की तरह उसी पर अँधेरा छाता जाता था।

जब इन्दुमती अज के समीप पहुँची तब आज का दिल यह सोचकर धड़कने लगा कि यह मेरा वरण करेगी या नहीं, किन्तु उस समय उसकी दक्षिण भुजा के केयूरबन्ध के स्थान में जो फरकन पैदा हुई उसने उसके सन्देह को दूर कर दिया। उस सर्वांग-सुन्दर क्षत्रिय राजकुमार के सामने जाकर राजकुमारी रुक गई। फूले हुए सहकार के पौधे को पाकर भौरों की पंक्ति अन्य पौधों के समीप नहीं जाती।

जब सुनन्दा ने देखा कि राजकुमारी का मन अज की ओर आकृष्ट हो गया है, तब वह राजवंशों के वृतान्त में प्रवीण प्रतिहारी विस्तार सहित यों कहने लगी—

"इक्ष्वाकु के वंश में काकुत्स्थ नाम का एक वीर उत्पन्न हुआ, जो राजाओं में ककुद के समान उन्नत और श्रेष्ठ था और चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त था। उत्तरकोसल देश के शासक उसी वीर के नाम से काकुत्स्थ कहलाते हैं। उस महा-पराक्रमी ककुत्स्थ के वंश में यशस्वी और कुल को उज्ज्वल करनेवाले उस राजा दिलीप ने जन्म लिया, जिसने निन्यानवे राजसूय यज्ञ करके सौवां यज्ञ केवल इसलिए अधूरा छोड़ दिया कि देवताओं के राजा इन्द्र के मन को पीड़ा न पहुँचे। उसके राज्यकाल में जब नाचनेवाली स्त्रियाँ थककर क्रीड़ा-स्थान के मध्यमार्ग में सो जाती थीं, तब वायु का भी साहस नहीं होता था कि उनके कपड़ों को हिलाये, हाथ तो डाल ही कौन सकता था? उस राजा दिलीप का पुत्र रघु अब शासन कर रहा है। सम्राट् रघु ने दिग्विजय करके विश्वजित् नामक यज्ञ को पूर्ण किया और यज्ञ की समाप्ति पर चारों दिशाओं से एकत्र हुई विभूति का दान कर दिया, जिससे उसके पास केवल मिट्टी के बर्तन शेष रह गये। उसका यश आज पृथ्वी की सीमाओं को पार कर गया है। वह पहाड़ों से ऊँचा चला गया है, समुद्रों से पार हो गया और पाताल को छेदकर उससे भी नीचे फैल गया है। जैसे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र का जयन्त नाम का पुत्र है, उसीप्रकार यह कुमार राजा रघु का तेजस्वी उत्तराधिकारी है, जो पिता के लिए शासनभार के

उठाने में समानरूप से सहायक हो रहा है। कुल, कान्ति, चढ़ती आयु और अनेक विद्या, शील आदि गुणों में यह तुम्हारे समान है। हे राजकुमारि, तुम इसके गले में वरमाला पहिना दो। हीरा स्वर्ण से मिल जाए।

सुनन्दा का वचन समाप्त होने पर नैसर्गिक लज्जा को दबाकर इन्दुमती ने प्रसन्न और निर्मलदृष्टि से कुमार अज को इसप्रकार स्वीकार कर लिया, मानो वरमाला पहिना दी हो। राजकुमारी वहाँ मुग्ध-सी होकर खड़ी रह गई। कुलीनता के कारण मुँह से कुछ न कह सकी। उसके मन की अभिलाषा का अनुमान केवल शरीरव्यापी रोमांच से हो रहा था। यह देखकर प्रतिहारी ने सखीभाव से परिहास करते हुए कहा—आर्ये, चलो आगे चलें! इस पर रोषभरी दृष्टि से उसने सुनन्दा की ओर देखा और निर्देश किया कि राजकुमार के कण्ठ में वरमाला पहना दे। प्रतिहारी सुनन्दा ने शरीरधारी प्रेम के सदृश माङ्गलिक सिन्दूर से रक्तवर्ण हुई माला को अज के गले में पहिना दिया। विशाल वक्षःस्थल तक लटकनेवाले उस मङ्गलमय पुष्पों के हार को पहिनकर राजकुमार ऐसा अनुभव करने लगा मानो विदर्भराज की कन्या की कोमल भुजायें उसके गले का स्पर्श कर रही हों।

उस दृश्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर विदर्भ के निवासी कहने लगे कि मेघों से मुक्त उज्ज्वल चन्द्रमा को चांदनी प्राप्त हो गई और शीतल समुद्र में भगवती गंगा अवतीर्ण हो गई। ये वाक्य स्वयंवर में उपस्थित अन्य राजाओं को बहुत कड़ुवे प्रतीत हुए। उस समय वहाँ एक ओर स्वयंवर के सुन्दर

परिणाम से कन्या-पक्ष के लोग बहुत प्रमुदित हो रहे थे, तो दूसरी ओर निराश राजाओं के मनों में जलन पैदा हो रही थी। स्वयंवर-मण्डप की दशा उस तालाब सी हो रही थी, जिसमें उषाकाल में एक ओर कमलिनी खिल रही हो, और दूसरी ओर कुमुदिनी मुरझा रही हो।

७.

अज का राजतिलक

विदर्भ का राजा भोज, स्वयंवर की समाप्ति पर अपनी बहिन इन्दुमती को लेकर राजधानी की ओर प्रस्थित हुआ। प्रातःकाल के चांद तथा अन्य नक्षत्रों के समान मुरझाए हुए चेहरों को लिए, निराश भूपति लोग भी अपने-अपने डेरों को रवाना हो गये। स्वयंवर में स्वर्ग के स्वामी इन्द्र की पत्नी शची स्वयं उपस्थित थीं, इसकारण क्रोधी होने पर भी राजा लोग शान्त रहे। उधर वर नये सजावट के सामान से सुशोभित, इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगे अर्धचन्द्राकार तोरणों से युक्त उस राजमार्ग पर पहुँचा, जहाँ दोनों ओर लगी हुई ध्वजाओं ने छत्र बनकर धूप को रोक रखा था। सोने के झरोखोंवाली हवेलियों पर से उस सुन्दर युगल को देखने के लिए नगर की महिलायें भांति-भांति से व्यस्तता प्रकट कर रही थीं।

किसी कामिनी का केशपाश गवाक्ष पर जाने की घबराहट में खुल गया, उस पर लिपटी हुई माला का बन्धन भी टूट गया। पर वह तब तक उन्हें बांध न सकी और हाथ से ही रोके रही जब तक वह गवाक्ष पर न पहुँच गई। कोई सुन्दरी

पांव में महावर लगा रही थी, इतने में वर-वधू की सवारी राजमार्ग पर आगई। सुन्दरी एकदम तेजी से झरोखे की ओर चल पड़ी, जिससे फर्श पर लाक्षारस की लाल रेखा खिच गई। किसी ने अभी अपनी दाहिनी आंख में अंजन लगाया था, बाईं आँखमें लगाने के लिए शलाका उठाई ही थी कि देखने के लिये खिड़की के पास जाना पड़ा, शलाका हाथ में ही रह गई। इसीप्रकार वर-वधू को देखने की उत्सुकता में नगर की रमणियां अपनी वेष-भूषा और वस्त्राभरणों तक की सुध भूलकर खिड़कियों पर आगईं। उनके सुगन्धित मुखों और चंचल नेत्रों को देखकर प्रतीत होता था कि मानो कम-लिनियों पर भौरे मंडरा रहे हों। जब वे रमणियां अज को देख रही थीं, तब उनका ध्यान और किसी ओर नहीं था। प्रतीत होता था कि अन्य सब इन्द्रियों की वृत्ति भी पूर्णरूप से चक्षुओं में ही प्रवेश कर गई है।

राजकुमारी ने अच्छा ही किया कि दूर से ही विवाह के प्रस्ताव भेजनेवाले राजकुमारों को छोड़कर स्वयंवर से पति का वरण किया, अन्यथा लक्ष्मी के सदृश राजकुमारी नारायण के सदृश रघुकुमार को कैसे पाती? यदि विधाता इस सुन्दर जोड़े को आपस में न मिलाता तो उसका रूप-निर्माण का प्रयत्न व्यर्थ हो जाता। प्रतीत होता है कि राजकुमारी ने किसी पूर्व-जन्म की स्मृति से ही राजकुमार का वरण किया है अन्यथा सहस्रों राजाओं का जमाव होने पर भी यह कामदेव और रति की जोड़ी कैसे मिल जाती? नगर-सुन्दरियों की इस प्रकार की मधुर बातें सुनता हुआ राजकुमार मंगलसूचक

विधि-विधानों से सजे हुए श्वशुर के महल के द्वार पर पहुँचा ।

द्वार पर पहुँचकर राजकुमार अज हथिनी पर से उतरा तो कामरूप के राजा ने उसे सहारा दिया, विदर्भ का राजकुमार उसे मार्ग दिखलाता चला । अज जैसे राजधानी की नारियों के हृदयों में प्रवेश कर गया था, उसीप्रकार आंगन में भी प्रविष्ट होगया । वहां विवाह-मण्डप में बहुमूल्य सिंहासन सजा हुआ था, अज उस पर विराजमान हुआ । रत्न-जटित पात्र में उसके लिए मधुपर्क और अर्घ्य प्रस्तुत किया गया, और वधू के पिता की ओर से दुपट्टों का जोड़ा दिया गया ।

महिलाओं की दृष्टियों के साथ ही उसने इन सब वस्तुओं को भी सादर ग्रहण कर लिया । जैसे पूर्णचन्द्र की किरणें फेनिल समुद्र के जल को उकसाकर बेला के पास ले जाती हैं, वैसे ही अन्तःपुर के विनीत परिजन दुकूलधारी वर को वधू के समीप ले गये । वहां भोज देश के राजा ने पहले तेजस्वी पुरोहित की विधिपूर्वक पूजा की । फिर पुरोहित ने यज्ञकुण्ड में अग्न्याधान करके उसमें आज्यादि सामग्री से होम किया और उस यज्ञाग्नि को साक्षी बनाकर वर-वधू का गठजोड़ा कर दिया । राजकुमार अपने हाथ में वधू के हाथ को लेकर ऐसे शोभायमान हो रहा था, मानो आम का वृक्ष अपने पल्लव से समीपस्थ अशोकलता के प्रवाल का ग्रहण कर रहा हो । उस एक ही क्षण में दोनों में प्रेम की भावना भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुई । अज का शरीर रोमांचित हो रहा

था, और इन्दुमती की अँगुलियाँ पसीज रही थीं। दोनों एक-दूसरे को संस्कार की क्रिया के समय देखने को उत्सुक थे, परन्तु लज्जावश पूरी तरह नहीं देख रहे थे। आँखों के कोनों से देखने का यत्न करते और दृष्टियाँ मिलने पर उन्हें पलट लेते थे। प्रज्वलित यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए वे दोनों ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सदा सम्बद्ध दिन और रात चमकते हुए मेरु पर्वत के इर्द-गिर्द घूम रहे हों। प्रदक्षिणा के पश्चात् पुरोहित के आदेशानुसार वधू ने लाजाओं की आहुति दी। आज्य और लाजों की आहुतियों से उठा हुआ सुगन्धित धूम्र इन्दुमती के कानों में कर्ण-भूषण के समान शोभायमान हो रहा था। यज्ञाग्नि के धुंए के कारण वधू की आँखें में जल आ रहा था, कानों में पहना हुआ बीजांकुर नाम का पुष्पों का गहना मुरझा गया था, और उसके कपोल लाल हो रहे थे। संस्कार के अन्त में अज और इन्दुमती पर स्नातकों, सम्बन्धियों सहित राजा और गृहस्थ स्त्रियों ने गीले अक्षत बरसाये।

इसप्रकार विधिपूर्वक बहिन का पाणिग्रहण संस्कार सम्पादित करके विदर्भराज ने अधिकारियों को आदेश दिया कि स्वयंवर में आये हुए अन्य नरेशों का आदर-सत्कार करें। नरेशों के हृदय में जलन थी, और मुंह पर मुस्कराहट। उनकी उस तालाब-सी गति हो रही थी, जिसकी सतह पर शान्ति हो परन्तु अन्दर भयानक मगरमच्छ विचर रहे हों। भोजराज ने उन्हें जो भेंट दी, उसे उपहार के रूप में वापिस करके वे लोग राजधानी से विदा हो गये।

राजधानी से तो राजा लोग विदा हो गये, परन्तु उनके दिलों में खोट था। पूर्व निश्चित इशारे के अनुसार कुछ दूर जाकर इन्दुमती को छीनने के लिये हिंस्रजन्तुओं के समान क्रोध में भरे हुए नरेशों का दल मार्ग रोकने के लिये एकत्र हो गया। राजा भोज ने भी अपनी बहिन का विवाह भली प्रकार समाप्त करके और अपने उत्साह के अनुसार उपहार देकर राघव को विदा किया, और स्वयं पीछे-पीछे चला। भोज तीन पड़ाव तक राजकुमार के साथ रहा। उसके पश्चात् अपनी राजधानी को लौट गया। राजाओं को दिग्विजय के समय सम्राट् रघु ने परास्त किया था, और उनसे कर वसूल किया था, इसकारण वे पहले से ही असन्तुष्ट थे। अब वे इस बात से तिलमिला उठे कि स्त्रीरत्न भी उसी के पुत्र के हाथ लगा। फलतः उस अभिमानी राजाओं के दल ने इन्दुमती को लेकर जाते हुए अज का रास्ता रोक लिया।

राजकुमार ने भोज-कन्या की रक्षा का कार्य अपने पिता के मन्त्री के नेतृत्व में सेना के सुपुर्द किया, और जैसे उमड़ती हुई गंगा के जल को शोणनद अपनी छाती पर ले लेता है, उसीप्रकार उसने शत्रु की महती सेना को थाम लिया। युद्ध में बराबर की टक्कर हुई। पैदल-पैदल से भिड़ गया, घुड़सवार घुड़सवार से और गजारूढ़ गजारूढ़ से जूझ गया। बिगुल बज रहे थे, इसकारण दोनों ओर के योद्धा जो अपने नाम और कुल की घोषणा करते थे, वह सुनाई नहीं देता था। उनकी सूचना एक-दूसरे पर चलाये गये बाणों पर अंकित नामादि से ही होती थी। युद्ध की भयानकता बढ़ती गई।

घोड़ों की टापों से जो धूल उड़ी उसे रथों के चक्रों ने गहरा कर दिया, और जब हाथियों के विशाल कानों ने उसे पंखों की तरह हिलाकर फैलाया तो धूलि ने सूर्यमण्डल को ढक लिया। आकाश इतना धूलिधूसरित हो गया कि रथ का अनुमान पहिये के शब्द से, हाथी का अनुमान गले में बंधे हुए घण्टे के निनाद से, और योद्धाओं का अनुमान अपने मालिक के नाम की घोषणा से हो रहा था। सेनाओं के संघर्ष से उत्पन्न उस धूल के घोर अन्धकार में मरे हुए घोड़ों और हाथियों का रुधिर-प्रवाह उषाकाल की लालिमा की तरह चमक रहा था। रणभूमि शीघ्र ही रक्त से सराबोर हो गई जिससे धूलि की जड़ें कट गईं, और आकाश में धूलि इसप्रकार दीखने लगी जैसे बुझती हुई आग का धुंआ हो।

युद्ध ने अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लिया। शत्रु के शस्त्र से बेहोश हुए वीर जब होश में आते थे, तब ध्वजाओं को पहिचान कर घायल करनेवाले शत्रु को ही मारते थे। वीरों की बलिष्ठ भुजाओं से फेंके हुए बाण यदि मार्ग में शत्रु के बाणों से काट भी दिये जाते थे, तो भी उनके अग्रभाग अपने प्रारम्भिक वेग से लक्ष्य तक पहुँच ही जाते थे। गजारूढ़ सैनिकों के सिर तेजधारवाले चक्रों से काट दिये जाते थे, तो भी श्येनपक्षी केशों को पंजों में दबोचकर उन्हें लिये आकाश में देर तक मंडराते रहते थे। फलतः वे पृथ्वी पर बहुत देर में गिरते थे। संग्राम की इस भीषणता में भी वीर योद्धा क्षात्र-धर्म के नियमों को नहीं भूलता था। जब उसके प्रहार से विरोधी घुड़सवार घोड़े की पीठ पर ही मूर्छित हो जाता था, तब प्रहर्ता उस

पर दूसरा प्रहार न करके यह चाहता था वह शीघ्र ही होश में आये और बराबरी की लड़ाई हो। युद्ध में मरे हुए हाथी-सवार योद्धाओं की नंगी तलवारें हाथों से छूटकर जब हाथियों के दाँतों पर पड़ती थीं तो आग उत्पन्न हो जाती थी, जो मस्त हाथियों के गण्डस्थल से बहते हुए जल से शान्त हो जाती थी। वह युद्धभूमि मृत्यु की मधुशाला-सी बन रही थी। बाणों से काटे हुए योद्धाओं के सिर फलों की तरह सज रहे थे, नीचे गिरे हुए शिरोवस्त्र प्यालों की जगह थे, जिनमें रुधिर सुरा के समान ढल रहा था। कई क्षत्रिय वीर-गति को प्राप्त होने पर स्वर्गगामी विमान में अप्सरा के संग आरूढ़ होकर आकाश से अपने ही कबन्ध को नाचता हुआ देख रहे थे। युद्ध की भीषणता का यह हाल था कि जो दो योद्धा सारथियों के मर जाने पर स्वयं ही अपने रथों के सारथी बन गये थे, घोड़ों के मरने पर पैदल होकर गदाओं के भी टूट जाने पर गुत्थमगुत्था हो गये। दो वीरों ने एक दूसरे पर इकट्ठा ही प्रहार किया, जिससे दोनों के इकट्ठे ही प्राण निकल गये, और दोनों इकट्ठे स्वर्ग में पहुँचे तो वहाँ दोनों में केवल एक अप्सरा की प्राप्ति के कारण विवाद छिड़ गया।

जैसे आगे और पीछे के तूफान की थपेड़े खाकर समुद्र की लहरें कभी ऊपर उठती हैं और कभी नीचे गिरती हैं, उसीप्रकार वे दोनों सैन्य-समूह क्रमशः कभी विजय की ओर बढ़ते और कभी नष्ट होते दिखाई देते थे। शत्रुओं ने अज की सेनाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया, तो भी अज तो शत्रुओं

की ओर बढ़ता ही गया। वायु धुएँ को उड़ा सकती है, परन्तु अग्नि तो उधर ही जायगी जिधर घास का ढेर है। वह मैदान में अकेला खड़ा रह गया, परन्तु रथ, तूणीर, कवच और धनुष आदि शक्तियों से सुसज्जित वह उस बाढ़ को ऐसे रोक रहा था, जैसे प्रलयकाल में उमड़ते हुए सागर के जल को विष्णु के वराहावतार ने रोका था। युद्ध में उसका दाहिना हाथ तूणीर से धनुष तक बाणों को निरन्तर और शीघ्र पहुँचाता हुआ अनेक-रूप-सा दिखाई देता था। उसके धनुष की कान तक खिंची हुई प्रत्यंचा मानो शत्रुओं का नाश करनेवाले बाणों को प्रतिक्षण जल दे रही थी। उसने अपने धनुष से मुक्त बाणों द्वारा काट-काट कर रणक्षेत्र में नरमुण्डों का ढेर लगा दिया। उन नरमुण्डों के होंठ क्रोध के मारे काटते-काटते लाल हो गये थे, त्योरियों की रेखायें स्पष्ट रूप से चढ़ी हुई थीं, और अब तक भी मुँह में मानो हुँकार का शब्द भरा हुआ था। अज का यह पराक्रम देखकर राजा लोग सब सेनाङ्गों और सब शस्त्रास्त्रों की सहायता से उसी पर आक्रमण करने लगे। जैसे कुहरे से ढके हुए प्रभात का अनुमान केवल धुंधले-से सूर्य से लगाया जाता है, वैसे ही उस समय रथ के अस्त्रों द्वारा ढके जाने पर उसका अनुमान केवल ध्वजा से लगाया जा सकता था। ऐसी संकटमय दशा में राजकुमार को प्रियंवद से प्राप्त सम्मोहनास्त्र का स्मरण आया। उसने शत्रुओं की सेना पर उस अस्त्र का प्रयोग कर दिया। सम्मोहनास्त्र का प्रहार होने पर शत्रुओं की सेना की ऐसी दशा हो गई कि जो हाथ धनुष की प्रत्यंचा खैंच रहे थे वे वहाँ से छूट गये,

शिरस्त्राण कन्धों पर गिर गये, और शरीर ध्वजा के खम्भे पर झुक गये। शत्रु की सेना सो गई। उस समय विजयी राजकुमार ने शङ्ख उठाकर होठों से लगाया और जोरदार विजय-ध्वनि की, मानो उस शङ्ख के मार्ग से भुजबल से रचाये हुए विशुद्ध यश का पान कर रहा हो। अपने सेनापति के शङ्खस्वर को पहिचान कर भागते हुए योद्धा लौट आये और यह देखकर हर्ष से फूल गये कि राजकुमार तालाब में कुम्हलाये पंकजों के मध्य में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की भाँति शोभायमान हो रहा था। मूर्छित नरेशों के रथ-केतुओं पर राघव द्वारा अङ्कित किये हुए रक्तरंजित बाण मानो नरेशों से कह रहे थे कि "तुम्हारा केवल यश छीना गया है, प्राण नहीं, इसका कारण कृपा है, अशक्ति नहीं।"

बेचारी इन्दुमती संग्राम की भयानकता से घबरा-सी रही थी। युद्ध से जीतकर जब राजकुमार वधू के पास आया, तब उसका एक हाथ धनुष की कोटि पर रखा हुआ था, केश-समूह शिरस्त्राण में से निकलकर कपोलों पर फैल रहा था और माथे पर पसीनें की बूंदें झलक रही थीं। राजकुमार ने इन्दुमती से कहा—इन राजाओं को देखो, अब बच्चा भी इनके हथियार छीन सकता है। ये लोग इसी बहादुरी के बल पर मुझसे तुम्हें छीनना चाहते थे।

दर्पण पर से सांस की भाप को दूर कर देने से जैसे मनुष्य का चेहरा स्पष्ट दीखने लगता है, उसी प्रकार शत्रुओं का भय हट जाने से इन्दुमती का चेहरा भी प्रसन्न और व्यक्त दीखने लगा।

अज की विजय से इन्दुमती बहुत प्रसन्न हुई, तो भी

उसने अपनी प्रसन्नता स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं की। जैसे आषाढ़ की वृष्टि से तृप्त हुई भूमि बादलों का अभिनन्दन मयूरी के केका-शब्दों से करती है, वैसे ही राजकुमारी ने लज्जावश राघव का अभिनन्दन सखियों द्वारा किया।

इस प्रकार सम्राट् रघु का पुत्र विरोधी राजाओं के मस्तकों पर पाँव धरकर उस निर्दोष राजकुमारी को घर ले आया। सेना के अश्वों के खुरों से उठे हुए रेणुओं ने इन्दुमती के सुन्दर केशों को सूखा करके उसे साक्षात् अज की विजयलक्ष्मी का रूप दे दिया था।

रघु को अज की विजय का वृत्तान्त पहले ही विदित हो गया था। विजयी पुत्र के उत्तम वधू सहित राजधानी में पहुँचने पर सम्राट् ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया और समस्त परिवार और राज्य का भार उसके कन्धों पर डालकर स्वयं शान्तिमार्ग का अवलम्बन किया। यह सूर्यवंशी राजाओं की कुल-प्रथा थी कि पुत्र के समर्थ हो जाने पर वे गृह को छोड़कर तपोवन के निवासी बन जाते थे।

८.

अज का स्वर्गवास

रघु ने अज की कलाई पर विवाह-सूत्र बँधने के साथ ही उसके हाथ में पृथ्वी का राजदण्ड भी सौंप दिया। जिस राज्य-लक्ष्मी को पाने के लिए राजपुत्र भयानक दुष्कर्म करने में भी संकोच नहीं करते, उसे अज ने पिता का आदेश समझकर ही ग्रहण किया, भोग की तृष्णा से प्रेरित होकर नहीं। जब वसिष्ठ मुनि ने राजतिलक के अवसर पर, जल से अज और वसुधा का साथ ही साथ अभिषेक किया, तब वसुधा भी मानो खुला सांस लेकर उत्तम पति प्राप्त होने से उत्पन्न हुए आनन्द को सूचित करने लगी। अथर्ववेद में विहित विधि-विधान के वेत्ता वसिष्ठ मुनि द्वारा अभिषेक किये जाने पर अज शत्रुओं की पहुँच से बाहिर हो गया। जब ब्राह्मण का ज्ञानबल और क्षत्रिय का अस्त्रबल परस्पर मिल जाते हैं, तब दोनों एक-दूसरे के सहायक बने हुए अग्नि और पवन के समान असह्य हो जाते हैं। अज अपने पिता के समान ही गुणवान् था। प्रजा को उसे पाकर ऐसा भान होने लगा मानो रघु ही फिर से युवा हो गया है। जनता में अज इतना लोकप्रिय था कि राज्य का हरएक व्यक्ति अपने को राजा का विशेष-कृपा पात्र समझता था। जैसे

समुद्र सभी नदियों को समानरूप से मानपूर्वक ग्रहण कर लेता है, वैसे ही रघु के लिए भी सारी प्रजा समान थी। जैसे वायु वृक्षों को झुका तो देता है, परन्तु जड़ से उखाड़कर नहीं फेंक देता, वैसे ही अज शत्रुओं के लिए न तो अत्यन्त कठोर था, और न अत्यन्त नर्म ही। वह मध्यमार्ग का अनुयायी था। सदा अन्य शक्तियों को दबाकर तो रखता था, परन्तु सर्वथा नष्ट नहीं करता था।

रघु ने जब देखा कि अज को प्रजाजनों ने प्रेम से अपना लिया है तो वह इस लोक के तो क्या, स्वर्गलोक के सुखों की ओर से भी उदासीन होगया। उसने मुनियों के योग्य बाना पहिन लिया। जब अज ने यह सुना तो तपोवन में जाकर अपने मुकुट-सुशोभित सिर को पिता के चरणों में झुका दिया, और यह प्रार्थना की कि मेरा परित्याग न कीजिये। श्रद्धा से की गई पुत्र की उस प्रार्थना को रघु ने स्वीकार कर लिया, और संसार का त्याग न किया, परन्तु राजकाज में भाग लेने से इन्कार कर दिया। जैसे सांप उतारी केंचुली को फिर से नहीं पहिनता, वैसे ही तपस्वी रघु ने भी छोड़ हुए राज्य को ग्रहण नहीं किया। नगर के बाहिर, एकान्त स्थान में रहकर वह योग-साधना में लवलीन हो गया, और कुछ समय पश्चात् समाधि द्वारा शरीर त्यागकर परमपद को प्राप्त हो गया। अज ने जब पिता के प्रयाण का समाचार सुना तो चिरकाल तक आंसू बहाकर मृत शरीर की अन्तिम-क्रिया भिक्षुओं के समान अग्निरहित पद्धति से की।

शरीर की अनित्यता का विचार करके वीर अज ने ही शीघ्र

शोक का परित्याग कर दिया और अपना सारा ध्यान प्रजा के पालन में लगा दिया। योग्य पति के प्राप्त होने से पृथ्वी रत्नों की और महारानी इन्दुमती पुत्र की जननी होगई। अज का पुत्र सहस्र किरणोंवाले सूर्य के समान तेजस्वी था। उसका यश दसों दिशाओं में व्याप्त होनेवाला है यह विचार करके पिता ने उसका नाम दशरथ रखा। वह विद्या द्वारा ऋषिऋण, यज्ञों द्वारा देवऋण और सन्तान द्वारा पितृऋण को चुकाकर उऋण हो गया। मानो सूर्य ग्रहण-मण्डल से मुक्त हो गया हो। अज का वैभव और गुण दोनों ही अन्यों के लिए थे। शक्ति द्वारा वह दुःखियों के दुःखों का निवारण करता था तो उसकी विद्या विद्वानों के सत्कार के काम में आती थी।

एक बार प्रजा की सुख-समृद्धि और उत्तम सन्तान की प्राप्ति से निश्चिन्त होकर वह नगर के समीप, नन्दन के समान एक सुन्दर उपवन में, शची-सहित इन्द्र के सदृश आनन्द-बिहार कर रहा था। उसी समय नारद मुनि दक्षिण-समुद्र के तटवर्ती गोकर्ण नामक स्थान की ओर महादेव की आराधना के लिए जाते हुए आकाश-मार्ग से गुजरे। अकस्मात् वेगवान् वायु ने वीणा के अग्रभाग पर टंगी हुई दिक्पुष्पों की माला का सभवतः उसकी सुगन्ध के लोभ से, अपहरण कर लिया। उस माला की सुगन्धि के लोभ से जो भ्रमरों की पंक्ति उसके पीछे-पीछे चली। वह मानो पवन द्वारा अपमानित मुनि-वीणा की आँखों के अंजन से काली अश्रु-माला थी। दिव्यपुष्पों की वह माला पार्थिवपुष्पों की ऋतुजन्य विभूति को परास्त करती हुई नीचे आई और ठीक रानी इन्दुमती की

छाती के मध्यभाग पर गिरी।

उर:स्थल पर गिरी हुई माला को क्षण भर तो इन्दुमती ने देखा, फिर आँखें बन्द कर लीं। उस आघात को वह सह न सकी! वह अचेत होकर गिर गई, और जैसे दीपक का गिरता हुआ तेल उसकी लौ को भी साथ ले जाता है, वैसे ही पृथ्वी पर गिरती हुई इन्दुमती ने पति को भी भूतल पर गिरा दिया। उनके गिरने पर समीपवर्ती सरोवर के पक्षी मानो सहानुभूति से, शोर मचाने लगे। इस पर परिजन लोग वहां पहुँच गये, और अज तथा इन्दुमती को होश में लाने का यत्न करने लगे। अज को तो होश आगया, पर इन्दुमती सचेत न हुई। उपाय भी तभी सफल होते हैं जब आयु शेष हो। तार-रहित वीणा के समान निःशब्द और निर्जीव इन्दुमती को गोद में उठाकर जब अज वहां से चला, तब ऐसे प्रतीत होता था मानो प्रभातकाल में मलिन मृगलेखा को धारण किये चन्द्रमा आकाश–मार्ग से जा रहा हो। इन्दुमती के वियोग में अज की स्वाभाविक धीरता जाती रही, और वह साधारण मनुष्य की तरह विलाप करने लगा। ठीक भी है, अधिक गर्मी मिलने पर लोहा भी नर्म हो जाता है, शरीर का तो कहना ही क्या है?

वह इसप्रकार विलाप करने लगा—यदि पुष्पों का सम्पर्क भी मनुष्य के प्राण ले सकता है तो और कौन-सी वस्तु है जिसे प्रहार की इच्छा होने पर विधाता अपना साधन नहीं बना सकता। अथवा विधाता का ढंग ही ऐसा है, वह कोमल वस्तु का संहार कोमल शस्त्र से ही करता है। वह कमल की

कोमल पत्तियों को मारने के लिए ओस की शीतल बूंद को काम में लाता है। परन्तु आश्चर्य है कि मैं इस माला को अपने हृदय पर रखता हूँ तो यह मुझे नहीं मारती। यह भी ईश्वर-इच्छा है। जो वस्तु एक के लिए विष है वही दूसरे के लिए अमृत होजाती है। यह मेरे भाग्यों का ही दोष था कि जब बिजली गिरी तो वृक्ष तो बच गया, और उसके आश्रित लता नष्ट होगई। प्रिये, यदि मुझ से कोई बड़ा अपराध होगया, तो भी तूने मेरा कभी अपमान नहीं किया। इस समय तो मुझ से कोई अपराध भी नहीं हुआ। फिर बोलना क्यों छोड़ दिया? परन्तु यह क्या, पवन से तेरे पुष्प-सुगन्धित घुंघराले केश हिल रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू जाग पड़ेगी। हे प्रिये, जाग उठ, और जैसे रात के समय गुफा में फैले हुए अन्धकार को तृणज्योति नाम की ओषधि नष्ट कर देती है, वैसे तू मेरे हृदय के विषाद को नष्ट कर दे। हे दयिते, प्रभात के समय अलग होकर सांझ के पश्चात् रात्रि चन्द्रमा को मिल जाती है और चकवी रातभर अलग रहकर प्रभातकाल चकवे के पास आजाती है। इन दोनों के विरहों का अन्त हो जाता है, परन्तु तेरा वियोग तो अत्यन्त है——क्या वह मुझे न जलायेगा? जीवनकाल में ही मेरे लिये तूने अपने गुण अर्थों में सन्निहित कर दिये थे। जैसे, कोकिल में मधुर कण्ठस्वर, कलहंसी में मस्तचाल, हरिणियों में चंचल दृष्टि, पवन से हिलती हुई लताओं में सुन्दर हाव-भाव, परन्तु सब तेरे सामने ही अच्छे लगते थे। अब तेरे अभाव में ये केवल दुःख को बढ़ाने के कारण होंगे। बाटिक में तूने आम्रलता

को इस संकल्प से बड़ा किया था कि उनको विवाह के बन्धन में बांधेगी। अभी वे दोनों ही कुँआरे हैं। आज मैं बिल्कुल लुट गया। धैर्य का बाँध टूट गया, हँसी-खेल विदा हो गये, संगीत शान्त होगया, ऋतुओं में कोई आनन्द न रहा, ये सुन्दर अलंकार व्यर्थ होगये, और मेरी सेज खाली होगई। तुझे मुझसे पृथक् करके विधाता ने सभी कुछ तो हर लिया—तू मेरी गृहिणी थी, पत्नी थी, अंतरंग सहेली थी, और संगीतादि ललितकलाओं में मेरी प्रियशिष्या थी। बस प्रिये, सब ऐश्वर्य होते हुए भी मेरे आमोद-प्रमोद तो तेरे साथ समाप्त होगये। *अब तो केवल सांस लेते हुए जीना ही शेष है।*

अपनी प्रिया के वियोग में कोसलदेश के स्वामी का यह विलाप इतना करुणाजनक था कि शाखाओं के द्रवित होने से रस बहने लगा, जिससे वृक्ष भी आर्द्र हो गये। परिजन लोगों ने किसीप्रकार इन्दुमती के शव को अज की गोद से लेकर उसकी चन्दन, अगर, आदि सुगन्धित वस्तुओं द्वारा अन्त्येष्टि क्रिया कर दी। राजा ने प्रिया के साथ ही चिता में प्रवेश नहीं किया। इसका यह कारण नहीं था कि उसे अधिक जीने की इच्छा थी, अपितु यह था कि संसार यह कहेगा कि कर्तव्य छोड़कर स्त्री के पीछे चला गया।

जिस समय अन्त्येष्टि के पश्चात् की सब क्रियाओं को उपवन में ही पूरा करके दस दिन के पश्चात् रात्रि व्यतीत हो जाने पर निःस्तेज चन्द्रमा के सदृश अज ने राजधानी में प्रवेश किया। उस समय उसे नगर की स्त्रियों के आँसुओं में, मानो सीमा का अतिक्रमण किये हुए अपने दुःख के अवशेष

दिखाई दिये।

जब यज्ञ के लिये दीक्षित वसिष्ठ मुनि को अज की विकलता के समाचार मिले, तब उन्होंने अपने शिष्य द्वारा उसे सान्त्वना-सन्देश भेजा। वसिष्ठ के शिष्य ने अज से कहा—

यज्ञ आरम्भ हो चुका है। उसकी समाप्ति से पहले मुनि आश्रम से नहीं हट सकते। इसकारण उन्होंने अपना सन्देश देकर मुझे आपके पास भेजा है। उसे सुनो, और हृदय में धारण करो। मुनि समाधि द्वारा भूत-भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों को जानते हैं। कुछ समय पूर्व, तृणविन्दु नाम के एक ऋषि अत्यन्त घोर तपस्या कर रहे थे। उनकी परीक्षा करने के लिये देवराज ने हरिणी नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा। हरिणी ने आश्रम में जाकर जब तप के विरोधी हाव-भाव दिखाये, तब ऋषि की शान्ति का बाँध टूट गया, और उन्होंने क्रोध में आकर शाप दे दिया कि 'तू मनुष्य-लोक में जन्म ले', बेचारी हरिणी ने ऋषि के चरणों में गिरकर निवेदन किया कि मैंने जो कुछ किया है, स्वामी की आज्ञा से किया है, और क्षमा मांगी तो ऋषि को दया आगई, और उन्होंने शाप को नर्म कर दिया। उन्होंने कहा कि जब तुम्हें स्वर्गीय-पुष्प के दर्शन होंगे, तब तुम शाप से छूट जाओगी। वह अप्सरा क्रथकैशिक राजाओं के वंश में इन्दुमती नाम से उत्पन्न हुई, और तुम्हारी पत्नी बनी। आकाश से गिरे हुए स्वर्गीय पुष्पों के हार ने उसे शाप से मुक्त कर दिया। इससे तुम्हें दुःखी न होना चाहिए, और न इसी चिन्ता में अपने को घुला देना चाहिये। जो जन्म लेते हैं उन पर आपत्तियाँ तो

आती ही रहती हैं। तुम्हें पृथ्वी की पालना में लगना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी ही राजाओं की असली पत्नी है। अपने अभ्युदय के समय में अभिमान का त्याग करके तुमने जिस धीरता का परिचय दिया था, आपत्ति के समय में साहस को न छोड़कर उसका पुनः परिचय देना चाहिए। रोकर भी तुम उसे कहां पा सकोगे? परलोक गये हुए जीव अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म ले लेते हैं। हे राजन्, यह स्मरण रखो कि मरना मनुष्य का स्वाभाविक-धर्म है, और जीना कृत्रिम है। मनुष्य यदि क्षण भर भी जी लेता है, तो यह लाभ की बात है। यह भी सोचने की बात है कि जब मनुष्य के जीव और देह का मेल ही टूट जानेवाला है, तो बन्धु-बान्धवों का मेल अटूट कैसे हो सकता है? फिर उनके वियोग में दुःख कैसा? हे भूमिपाल, तुम्हें साधारण व्यक्तियों की भाँति शोक से ग्रस्त होना शोभा नहीं देता। पेड़ और पर्वत में फिर भेद ही क्या है, यदि दोनों ही वायु के झोंके से कम्पित होने लगें?

'ऐसा ही होगा' यह कहकर अज ने गुरु के शिष्य को विदा कर दिया, परन्तु गुरु का सन्देश उसके शोकपूर्ण हृदय में घर न कर सका, इसकारण वह भी शिष्य के साथ ही मानो गुरु के पास चला गया। बालक की आयु अभी कम थी, इस कारण इन्दुमती के चित्रों और स्वप्न-दर्शनों द्वारा किसी तरह दिल वहलाकर अज ने आठ वर्ष काटे। उसके पश्चात् जैसे ठुका हुआ कील भवन के फर्श को तोड़ देता है, शोक ने उसके हृदय को बींध दिया, और

प्रिया के पास शीघ्र जाने का साधन मानकर वह मृत्यु का भी स्वागत करने लगा। भलीप्रकार सुशिक्षित और संस्कार-युक्त कुमार को राज्य का भार सौंपकर, रोगी शरीर का परित्याग करने के लिए उसने आमरण अनशन का आश्रय लिया, और गंगा तथा सरयू के संगम पर शरीर त्यागकर स्वर्गलोक के नन्दनवनों में प्रिया के साथ विहरण का अधिकार प्राप्त कर लिया।

९.

पुत्र-वियोग का शाप

पिता के पश्चात्, जितेन्द्रिय राजाओं के चरणचिन्हों पर चलते हुए दशरथ ने उत्तर कोसल देश पर शासन किया। उनके शासन में प्रजा अत्यन्त सन्तुष्ट थी। अन्दर के रोगों और बाहर के शत्रुओं का कोई भय नहीं था। दशरथ के शान्तिमय तेजस्वी शासन के कारण पृथ्वी भरपूर अन्न-फल प्रदान करती थी। रघु की दसों दिशाओं को जीतकर एकत्र की हुई जिस श्री की रक्षा अज ने की थी, पराक्रमी दशरथ के समय में भी उसकी शोभा घटी नहीं। वह मानो भूमि पर देवाताओं का स्थानापन्न था। वह दुष्टों का दमन करने के कारण यम था, धन की वर्षा के कारण कुबेर था, और खेती के लिए जल की व्यवस्था करने के कारण वरुण का प्रतिनिधि बना हुआ था। उसे न शिकार का अधिक शौक था, और न जुए अथवा शराब का व्यसन था। नव-यौवन प्रियतमा की आसक्ति भी उसे कर्तव्य के मार्ग से च्युत नहीं कर सकती थी। दशरथ ने देवताओं के राजा के सामने भी कभी दीन वचन नहीं कहा, उपहास में भी कभी झूठ नहीं बोला, और शत्रुओं से भी कठोर भाषा का प्रयोग नहीं किया। राजा लोग उससे अभय और

अस्त्र दोनों का पाठ सीखते थे। अनुकूलवर्तियों का वह सुहृदय अर्थात् गहरा मित्र था, और विरोधियों के लिए वह वज्र के समान कठोर हृदयवाला था।

उसने चतुरंगिणी सेना को लेकर एकाकी ही समुद्रपर्यन्ता भूमि पर विजय प्राप्त की। कुबेर के समान सम्पत्तिशाली दशरथ की विजय-दुन्दुभि समुद्र की उमड़ती लहरों के गम्भीर नाद में सुनाई दे रही थी। शत्रुओं के नाश के कारण विधवा हुई राजपत्नियों, और मन्त्रियों की प्रेरणा से बद्धाञ्जलि होकर आये राजकुमारों की प्रार्थनाओं से द्रवित होकर दशरथ ने समुद्र तट पर पहुँचकर अपनी विजय यात्रा बन्द कर दी, और सेना के साथ अलका के समान सुन्दर अयोध्या नगरी में लौट आया।

अग्नि के समान तेजस्वी और चन्द्रमा के समान शीतल होने के कारण अत्यन्त सफल चक्रवर्ती राजा होता हुआ भी यह सोचकर कि लक्ष्मी अत्यन्त चंचला है, वह सदा सावधान और प्रभावरहित होकर शासन करता था। जैसे ऊँचे पर्वतों से उत्पन्न हुई नदियाँ विशाल समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही कौशल, केकैय और मगध के प्रतिष्ठित राजाओं की पुत्रियाँ दशरथ को पत्नी रूप में प्राप्त हुईं।

अकस्मात् स्वर्गलोक पर असुरों ने आक्रमण कर दिया। देवताओं के राजा इन्द्र ने अपनी सहायता के लिए चक्रवर्ती दशरथ को निमन्त्रण भेजा, जिसे स्वीकार करके दशरथ ने युद्ध में असुरों को परास्त किया और देवताओं की पत्नियों का अशीर्वाद प्राप्त किया। राजा प्रजा, मन्त्री और उत्साह

इन तीन राज-शक्तियों के समान तीनों पत्नियों से युक्त थे। शत्रुओं को जीतने में कुशल राजा दशरथ स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान शोभायमान होने लगे। इन्द्र के शत्रुओं को परास्त करने के कारण उसके विजय-संगीत निर्भय हुई अप्सराओं के मुँह से सुनाई देने लगे। तब उस विजेता ने मल का नाश करनेवाली तमसा नदी के तट पर स्वर्णयूपों से सुशोभित यज्ञ-मण्डप रचकर राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। दिग्विजय और राजसूय यज्ञ के कारण उसका पद इतना ऊँचा हो गया कि इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी के सामने उसका सिर नहीं झुकता था।

शरद् की समाप्ति पर मानो उत्तरदिशा की यात्रा करने के लिये भगवान् भास्कर ने मलयाचल से प्रयाण कर दिया। पहले पुष्प खिले, फिर वनस्पतियों ने नई कोंपलों को जन्म दिया, उसके पश्चात् भौंरों और कोकिलों की ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं, और अन्त में हरीभरी वनस्थली को पार करके भूतल पर सुहावनी वसन्तऋतु शोभायमान होगई। हृदय में उमंग उत्पन्न करनेवाने वसन्तऋतु के प्रभाव की प्रेरणा पाकर राजा दशरथ ने शिकार के लिये जाने का निश्चय किया। शिकार से उनका यह उद्देश्य नहीं था कि व्यसन की पूर्ति करें अपितु वह चलते हुए लक्ष्यों पर निशाना लगाने के अभ्यास और क्रोध के समय उनकी चेष्टाओं के अध्ययन, और परिश्रम द्वारा शरीर को हल्का और फुर्तीला करने के लिए मृगया करना चाहता था। मृगया के लिये जाने से पहले उसने अपने मंत्रियों की अनुमति भी प्राप्त करली थी। मृगया के अनुकूल

वेष धारण करके और विशाल धनुष को हाथ में लेकर जब वह अश्वारोही अनुयायियों के आगे-आगे वन की ओर चला तो खुरों से उठी हुई धूलि से आकाश आच्छादित होगया। राजा ने अपने सिर के केशों को लता से बाँध रखा था वृक्षों के सदृश रंगवाला कवच धारण किया हुआ था, और घोड़े की चाल के साथ उसके कानों के कुण्डल हिलते थे। इस वेष में वह बहुत ही शोभायमान हो रहा था। राजा के शिकार के लिये जंगल में घुसने से पहले वहां शिकारी कुत्तों और मृगों को बाँधनेवाली रस्सियों को लेकर शिकारी लोग पहुँच चुके थे। आग और चोरों की आशंका का उपायकर लिया गया था, घोड़ों के भागने के योग्य मार्ग बना दिये गये थे और स्थान-स्थान पर प्याउओं की व्यवस्था कर दी गई थी,

राजा कई दिनों तक शिकार में लगा रहा। उसने जंगली सुअरों, हरिणों और सिंहों को शरों का लक्ष्य बनाने में सफलता प्राप्त की। एक दिन हरिण का पीछा करता हुआ राजा अकेला पड़ गया, और थकान के कारण मुँह से झाग निकलते हुए घोड़े को भगाता हुआ तपस्वियों द्वारा सुशोभित तमसा नदी के तट पर जा पहुँचा। वहाँ उसे दूर से आता हुआ एक गंभीर शब्द सुनाई दिया, जिसे उसने हाथी की ध्वनि समझा और जंगली हाथी को मारने के लिए उसने शब्दबेधी बाण का प्रयोग किया। वह शब्द वस्तुतः नदी से घड़े में पानी भरने का था। जब मनुष्य की आँखों पर रजोगुण का पर्दा छा जाता है, तब उसकी बुद्धि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं कर सकती। क्षत्रिय के लिए हाथी का बध निषिद्ध है। आखेट के

जोश में दशरथ वही कर बैठा। उसका फल बहुत ही विकट हुआ। 'हा तात!' का करुणाजनक शब्द आकाश में गूंज गया। उसे सुनकर दशरथ लक्ष्यस्थान पर पहुँचा तो देखा कि बेतों के झुर्मुट में एक मुनिकुमार घायल पड़ा है। उसे देखकर राजा के हृदय में भी तीर-सा चुभ गया। राजा ने घोड़े से उतरकर घड़े के सहारे पड़े हुए उस तपस्विकुमार से परिचय पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि वह तपस्विनी शूद्रा माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ तपस्वी पिता का पुत्र श्रवणकुमार है। मुनिकुमार के कहने से राजा उसे उठाकर उसके अन्धे माता-पिता के पास ले गया, और वहाँ अपना पूरा परिचय देकर यह निवेदन किया कि यह पाप मुझ से अज्ञानवश हुआ है। पुत्र की दशा जानकर बूढ़े माता-पिता ने बहुत विलाप किया, और राजा को प्रेरणा की कि वह बालक के शरीर से शर को निकाल दे। शर के निकलते ही रुधिर की धारा बह निकली, जिससे कुमार का शरीर ठण्डा हो गया। तब क्रुद्ध पिता ने अपनी आँखों के आँसुओं के जल को अंजलि में लेकर दशरथ को शाप दिया।

पिता ने कहा—जैसे बुढ़ापे में मैं पुत्र-वियोग में प्राण छोड़ रहा हूँ, वैसे तू भी पुत्र-वियोग में ही प्राण छोड़ेगा।

इस शाप को सुनकर दशरथ दुःखी भी हुआ और सुखी भी। उसके कोई सन्तान नहीं थी। उसने मुनि से कहा—भगवन्, मुझ सन्तानहीन को ऐसा शाप देकर आपने एक प्रकार से यह वर-दान भी दे दिया है कि मेरे सन्तान होगी। ऐसा होता भी है। जंगल को जलाकर राख करदेने वाली आग वहाँ की भूमि

को उत्तम कृषि के योग्य बना देती है। राजा ने फिर निवेदन किया मैं अपराधी होने के कारण बध के योग्य हूँ। आज्ञा दीजिये, मैं आपकी इच्छा को पूरी करूंगा। मुनि नें यह इच्छा प्रकट की कि उसके पुत्र के साथ ही पत्नीसहित चिता में भस्मीभूत होने के लिए ईंधन की व्यवस्था कर दी जाय। इस समय अनुचर वहाँ पहुँच गये थे। उन द्वारा राजा ने उन तीनों की अंत्येष्टि की व्यवस्था कर दी. और शाप के बोझ से दबा हुआ दुःख लेकर राजधानी को वापिस आगया। उस समय उसकी दशा उस समुद्र जैसी थी, जिसके अंदर जलाने की शक्ति रखनेवाला बड़वानल छिपा हुआ हो।

१०.

राम-जन्म

इंद्र के समान तेजस्वी तथा प्रतापी राजा दशरथ को पृथ्वी का राज्य करते बहुत वर्ष व्यतीत होगये। परन्तु उसे पितृ-ऋण चुकाने का एकमात्र साधन पुत्र प्राप्त न हुआ। मन्थन से पूर्व भी समुद्र में रत्न थे, परन्तु निमित्त न होने के कारण वे प्रकट न हुए। उस समय राजा दशरथ की भी ऐसी ही दशा थी, तब राजा को सन्तान प्राप्त हो इस उद्देश्य से ऋष्यशृंगादि ऋषियों ने पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया।

जिस समय यह यज्ञ आरम्भ हुआ, उसी समय जैसे धूप से बचने के लिए राही लोग वृक्ष के पास जाते हैं, रावण के अत्याचारों से सताये हुए देवगण विष्णु भगवान् के पास पहुँचे। जब देवगण क्षीरसमुद्र में पहुँचे, भगवान् की नींद खुल गई। यदि भेंट में देर न हो, तो समझ लो कि कार्य-सिद्धि होगी। देवताओं ने झुककर भगवान् को प्रणाम किया और स्तुति वाक्यों द्वारा उनके असुरविनाशक, तथा वाणी और मन के अगोचर रूप का इसप्रकार अभिनन्दन किया—

सृष्टि की रचना, पालन, और संहार करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन नामों से स्मरण किये जाने

वाले भगवान्, तुम्हें नमस्कार हो। जैसे वर्षा का जल पृथ्वी पर आकर देश-देश के विकारों को अपना हिस्सा बनाकर भी स्वयं जल ही रहता है, तुम भी सब व्यवस्थाओं में रहते हुए स्वयं निर्विकार रहते हो। तुम अपरिमित हो, परन्तु संसार तुममें परिमित है। तुम्हें कुछ नहीं चाहिए, परन्तु तुम सब सज्जनों की अभिलाषायें पूर्ण करते हो। तुम्हें कोई नहीं जीत सकता, परन्तु तुम सब को जीते हुए हो, और तुम स्वयं सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हुए भी स्थूल सृष्टि के कारण हो। योगाभ्यास द्वारा मन को अन्तर्मुख करके योगीजन तुम्हारे ज्योतिर्मय रूप को देखने का यत्न करते हैं। अनेक प्रकार के मत-मतान्तर माननेवाले साधक लोग समुद्र में गिरनेवाली गंगा की अनेक धाराओं की भाँति एक तुम्हीं को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सिन्धु के गर्भ में वर्तमान रत्न गिने नहीं जा सकते, और जैसे सूर्य की किरणें असंख्य हैं, वैसे ही हे प्रभो, तुम्हारे गुणों की तुलना नहीं हो सकती। तुम्हारी महिमा का वर्णन करके मौन हो जाना पड़ता है, उसका कारण यह नहीं कि तुम्हारी महिमा का अन्त है, अपितु यह है कि हमारी स्तुति करने की शक्ति सीमित है।

इसप्रकार देवताओं ने भगवान् विष्णु को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया। वह स्तुति क्या थी, केवल भगवान् के सच्चे गुणों का वर्णन थी। स्तुति के पश्चात् कुशल प्रश्न करके देवताओं ने संसार के उस संकट का वर्णन किया जो अकाल-प्रलय के समान उमड़ते हुए रावणरूपी समुद्र से हो रहा था, देवताओं का निवेदन सुनकर समुद्रतट के पर्वतों की गुफाओं

से प्रतिध्वनित होते हुए स्वर से भगवान् बोले—

हे देवगण, जैसे तमोगुण सत्व और रज को परास्त कर देता है, वैसे ही रावण द्वारा आप लोगों के परास्त होने की बात मुझे मालूम है। प्रमाद के कारण पाप से कुचले गये मन की भाँति आप लोगों का रावण द्वारा दलित होना मुझे विदित है। हम दोनों का एक ही लक्ष्य है, इस कारण देवराज ने मुझसे रावण के नाश की प्रार्थना नहीं की, ठीक भी है। जब जंगल में आग लगती है तब वायु निमन्त्रण बिना ही उसका सारथि बन जाता है। अपने दुष्ट कर्मों से रावण ने अपना सिर मानो मेरे चक्र का लक्ष्य बना दिया है। जैसे चन्दन का वृक्ष अपने साथ सर्प के संपर्क को यह समझकर सह लेता है कि विधाता की ऐसी इच्छा है, वैसे ही मैंने रावण की अब तक केवल इसलिये उपेक्षा की है कि उसे ब्रह्मा का वर प्राप्त है। उसने अपने तप से संतुष्ट करके ब्रह्मा से यह वर माँगा था कि 'मुझे देवताओं से अभय प्राप्त हो।' मनुष्य को तुच्छ जानकर उससे अवध्यता के वर की याचना नहीं की थी। सो मैं दशरथ के घर में जन्म लेकर रावण का नाश करूँगा—मैं रणक्षेत्र की बलिवेदी पर उसके कटे हुए सिररूपी कमलों की भेंट चढ़ाऊँगा। तुम लोग घबराओ नहीं। शीघ्र ही पृथ्वी पर यज्ञादि क्रियायें निर्विघ्न रूप से होने लगेंगी। आकाश में विचरण करनेवाले लोग पुष्पक के डर को छोड़ निर्भय रूप से मेघ-रहित अन्तरिक्ष में विहार कर सकेंगे।

रावणरूपी दुर्भिक्ष के आतंक से कुम्हलाये हुए देव-

शस्य का अपनी आशा भरी वाणी के अमृत से सींचकर वह अन्यायहारी कृष्ण मेघ तिरोहित हो गये।

राजा दशरथ का जो पुत्रेष्टि यज्ञ हो रहा था, उसके अन्त में पात्र में चरु लेकर एक दिव्यपुरुष उपस्थित हुआ। उसने इस सूचना के साथ वह चरु महाराज को दिया कि इसे रानियों को खाने के लिये बाँट दिया जाय। महाराज ने चरु का आधा-आधा भाग पटरानी कौसल्या, और प्रिया कैकेयी को देकर उन्हें इशारा किया कि सुमित्रा को भी बाँट दो। दोनों बड़ी रानियों ने महाराज के आशय को समझकर अत्यन्त सौजन्य से अपने दोनों भागों में से आधा-आधा सुमित्रा को भी दे दिया। मद पर झूमने वाली भ्रमरी हाथी के मस्तक के दोनों ओर बहने वाली मद रेखाओं को समान रूप से प्यारी होती है। इसीप्रकार सुमित्रा दोनों रानियों को एक-सी प्यारी थी।

राजपत्नियाँ यथासमय गर्भवती हुईं। उस दशा में उन्हें जो स्वप्न आये, वह अत्यन्त मंगलसूचक थे। उन्हें अपने चारों ओर शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाली मूर्तियाँ दिखाई देती थीं। उन्हें प्रतीत होता था कि वह आकाश में सुनहले पंखों से तेज को फैलाने वाले, और पंखों के वेग से मेघों को विचलित करने वाले सुवर्ण गरुड़ पर सवारी कर रही हैं। पद्मपत्र से हवा करती हुई, कौसुम-धारिणी लक्ष्मी उनकी सेवा में संलग्न है। आकाशगंगा में स्नान करके विशुद्ध हुए ब्रह्मर्षि वेदपाठ करते हुए उनकी उपासना कर रहे हैं। इसप्रकार के स्वप्नों को सुनकर राजा

मन ही मन प्रसन्न होता था। उसे अनुभव होता था कि जैसे एक ही चन्द्रमा विशुद्ध जल में प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपों में दिखायी देता है, वैसे ही एक ही भगवान् अनेक रूप धारण करके पत्नियों के गर्भों में विद्यमान हैं।

समय आने पर पटरानी कौसल्या ने रात्रि के अन्धकार को नष्ट करनेवाली ज्योति के समान तेजस्वी बालक को जन्म दिया, बालक की सुन्दरता से प्रभावित होकर राजा ने उसका संसार के लिये मंगलकारी 'राम' यह नाम रखा। रघुवंश के उस दीपक के जलने पर सूतिका-गृह के सब दीप मानो आभाहीन होगये। कैकेयी के भरत नाम का सुशील बालक उत्पन्न हुआ। जैसे नम्रता के संसर्ग से ऐश्वर्य की शोभा बढ़ जाती है, उस पुत्र के संसर्ग से माता की शोभा भी सौगुनी होगई। सुमित्रा के गर्भ से जोड़ा उत्पन्न हुआ—उन दोनों के नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखे गये। उन बालकों के जन्म लेने पर आकाश में देवताओं और पृथ्वी पर प्रकृति ने आनन्द प्रकट किया। यों तो वह सभी एक-दूसरे से गहरा प्रेम करते थे, परन्तु उनमें से भी राम और लक्ष्मण, तथा भरत और शत्रुघ्न में परस्पर असाधारण प्रेम था, जैसे वायु और अग्नि का और चाँद और समुद्र का परस्पर आकर्षण अटूट है, वैसे उन युगलों का भी था।

दैत्यों की असि-धाराओं को तोड़ देनेवाले चार दाँतों से जैसे ऐरावत, साम, दाम, दण्ड, भेद इन चार उपायों से जैसे नीति और घुटनों को छूनेवाली लम्बी चार भुजाओं से जैसे विष्णु शोभायमान होते हैं, वैसे ही वह चक्रवर्ती राजा उन तेज के पुंज चारों पुत्रों से शोभायमान हो रहा था।

११.

राम-विवाह

ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ होरहा था, राक्षस लोग उसमें विघ्न उत्पन्न करते थे। यद्यपि राम अभी बच्चे ही थे, और उनके सिर पर की बालशिखा भी नहीं कटी थी, कि ऋषि ने महाराज दशरथ के पास जाकर यज्ञ की रक्षा के लिये राम को भेजने की मांग की। तेजस्वियों का तेज देखा जाता है आयु के दिन नहीं गिने जाते। महाराज ने इच्छा न रहते भी ऋषि के आग्रह पर राम और लक्ष्मण को उनके साथ भेज दिया। रघुकुल की यह पुरातन पद्धति थी कि मांगनेवाले यदि प्राणों की याचना भी करें तो भी निराश नहीं होते थे। महाराज राजकुमारों की यात्रा को मांगलिक करने के लिए अभी नगर के मार्गों की सफाई और सजावट के सम्बन्ध में आज्ञा दे ही रहे थे कि पुष्पगन्ध से युक्त जल बरसाने वाले बादलों ने वायु के साथ आकर उन्हें सींच दिया। जब दोनों धनुषधारी भाई जाने के समय पिता के चरणों में झुके तब उनके सिरों पर पिता की आँखों से निकलते हुए वियोगाश्रु टपक रहे थे। ऋषि केवल राम और लक्ष्मण को ही अपने साथ ले जाना चाहते थे, सेना को नहीं। इस कारण महाराज ने दोनों पुत्रों को जो आशीर्वाद

दिया वही उनका कवच बन गया। ऋषि के साथ जाते हुए दोनों भाइयों ने माताओं को प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

मार्ग में ऋषि ने राजकुमारों को बल और अतिबल नाम की विद्या का उपदेश दिया। उसमें उनका चित्त ऐसा मग्न हो गया कि मणिमय मार्गों पर चलने के अभ्यस्त राजकुमारों के लिए कटीले मार्ग ऐसे बन गये मानो माता के आस-पास की भूमि हों। मार्ग में ऋषि उन्हें पुराने इतिहास भी सुनाते गये जिससे उन्हें थकान का अनुभव न हुआ। जब वह आश्रम में पहुँचे तो तपस्वी लोगों को उन्हें देखकर जो प्रसन्नता हुई वह न कमलों से सुशोभित जलाशयों को देखकर हुई थी, और न मार्ग की थकान को हरनेवाले छयावाले वृक्षों को देखकर। ऋषि विश्वामित्र का वह आश्रम, जहां किसी दिन महादेव के कोप से कामदेव के शरीर का दाह हुआ था, राजकुमारों के काम-सदृश सुन्दर शरीरों से फिर एक बार सुशोभित हो उठा।

मार्ग में एक जंगल था, जिसमें अगस्त ऋषि के शाप से दारुणरूपा ताड़का निवास करती थी, और तपस्वियों को दुःख देती थी। जब दोनों भाई वहां पहुँचे तो उन्होंने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली, और चौकन्ने होगये। उनकी प्रत्यंचा का शब्द सुनकर रात के गहरे अन्धकार के समान काली, कपालों के कुण्डल धारण किये हुए भयानक रूप के कारण बलाकाओं वाली काली मेघमाला के समान राक्षसी प्रादुर्भूत होगई। उसके वेग से रास्ते के वृक्ष कांप रहे थे, मुर्दों के कफन उसके शरीर पर लटक रहे थे और वह ऊँचे स्वर से चिंघाड़

रही थी। श्मशान से आती हुई आंधी की भाँति दुर्गन्धयुक्त ताडका को देखकर एक बार तो राम घबरा गया। परन्तु जब उसने राक्षसी की प्रहार के लिए उठी हुई एक भुजा को देखा, और कमर में लटकती हुई पुरुषों की आंतों की मेखला पर दृष्टि डाली, तो स्त्री पर प्रहार करने के सम्बन्ध में उसके मन में जो घृणा की भावना थी, वह जाती रही। उसने प्रत्यंचा पर तीर चढ़ाया और पूरे वेग से ताडका की छाती का निशाना लगाकर छोड़ दिया। उस तीर ने ताडका के वक्षःस्थल में जो सूराख किया, वह मानो राक्षसों के दुर्ग में यमराज के प्रवेश का द्वार बन गया। बाण जाकर हृदय में लगा। जब ताडका मरकर गिरी, उससे केवल उस जंगल की भूमि ही प्रकम्पित नहीं हुई, तीनों लोकों को परास्त करके स्थिर की हुई रावण की राज्य-लक्ष्मी भी मूल से हिल गई।

ताडका-वध से सन्तुष्ट मुनि ने मार्ग में ही राम को राक्षसों का संहार करनेवाले शस्त्र का उपदेश दिया। वामनाश्रम में पहुँचने पर तपस्वियों ने दोनों भाइयों का स्वागत-सत्कार किया।

ऋषि विश्वामित्र ने दीक्षा लेकर यज्ञ आरम्भ कर दिया। जैसे सूर्य और चन्द्रमा क्रम से उदित होकर संसार की अंधकार से रक्षा करते हैं, वैसे राम और लक्ष्मण राक्षसों से ऋषि की रक्षा करने लगे। यज्ञ प्रारम्भ होने पर घबराये हुए ऋषियों ने देखा कि बन्धूक फूल के समान स्थूल रक्तबिन्दु आकाश से वेदि पर गिर रहे हैं। तूणीर में से बाण निकालते हुए राम ने ऊपर दृष्टि उठाई तो उन्हें राक्षसों की सेना दिखाई

दी। राम ने उनके केवल दोनों सेनानायकों को ही अपने शरों का लक्ष्य बनाया दूसरों को नहीं। क्या महान् सर्पों का शत्रु गरुड कभी छोटे सर्पों पर भी वार करता है? आक्रमणकारियों का एक नेता ताड़का का पुत्र मारीचि था। राम ने वायव्यास्त्र के प्रयोग से उसके पर्वत के समान भारी शरीर को भी बहुत दूर गिरा दिया। दूसरे नेता सुबाहु को, जो कि माया द्वारा स्थान-स्थान पर विचरण कर रहा था, क्षुरप्र नाम के बाण से काटकर आश्रम से बाहिर पक्षियों और जंगली पशुओं के खाने के लिए फेंक दिया। नेताओं के वध से शेष राक्षस भाग गये। उपद्रव के शान्त हो जाने पर ऋत्विज् लोगों ने दोनों भाइयों की सांग्रामिक सफलता का अभिनन्दन करके मौन व्रत धारण किये हुए मुनि विश्वामित्र के यज्ञ को शान्तिपूर्वक पूर्ण किया। यज्ञ के अन्त में दोनों भाइयों ने चमत्कृत काकपक्ष वाले अपने सिर ऋषि के चरणों में झुका दिये। ऋषि ने आशीर्वाद देते हुई कुशाओं से छिले हुए अपने हाथों से उनके सिरों का स्पर्श किया।

मिथिला के राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के स्वयंवर-यज्ञ में ऋषि को भी निमन्त्रित किया था। स्वयंवर में यह नियम था कि जो राजपुत्र पुराने शिव-धनुष को तोड़ेगा, सीता उसके गले में वरमाला डालेगी। ऋषि जब स्वयंवर-यज्ञ में जाने लगे तो उन्होंने धनुष देखने के लिए उत्सुक राम और लक्ष्मण को भी साथ ले लिया। मार्ग में अपने पति गौतम मुनि के शाप से पत्थर बनी अहिल्या शाप के दिन व्यतीत कर रही थी। उसने शाप के बन्धन से छूटकर फिर अपना सुन्दर मानव-वेष प्राप्त कर लिया। यह राम के चरण-रेणु की ही कृपा थी।

जब अर्थ और काम से अलंकृत शरीरधारी धर्म के समान राम-लक्ष्मण सहित ऋषि विश्वामित्र के पधारने का समाचार मिला तो राजा जनक अगुवानी के लिए आदर सहित उनकी सेवा में पहुँचे। पुनर्वसु नाम के नक्षत्रों के समान तेजस्वी राजपुत्रों की छवि को देख मिथिलापुर निवासी इतने प्रसन्न हुए कि क्षण भर के लिए आंख झपकाना भी उन्हें विघ्न-सा प्रतीत हो रहा था। जब यज्ञविधि समाप्त होगई, तब अनुकूल समय देखकर ऋषि ने राजा को बतलाया कि राम शिव-धनुष के दर्शन करना चाहते हैं। एक ओर राम का ऊँचा वंश, और कोमल शरीर, दूसरी ओर शिव का न झुकनेवाला प्रचण्ड धनुष, दोनों को विचारकर राजा जनक मन में बहुत चिन्ता करने लगे। वह मुनि से कहने लगे—

भगवन्, जिस कार्य को बड़े-बड़े मस्त हाथी भी नहीं कर सके, उसके लिए मैं इस कोमल-कलभ को कैसे अनुमति दूँ। हे तात, धनुष की प्रत्यंचा को खैंचते-खैंचते जिनके हाथों की त्वचायें कठोर होगई हैं, एसे अनेक धनुर्धारी क्षत्रिय उस धनुष को उठाने के लिए आये, और अशक्ति के कारण अपनी भुजाओं को धिक्कारते हुए चले गये।

ऋषि ने उत्तर दिया—

राजन् सुनो, इस राम के बल को वाणी से क्या कहूँ? जब पर्वत पर बिजली की भाँति यह शिव-धनुष पर पड़ेगा, तब तुम स्वयं इसका परिचय पा जाओगे; जैसे जुगनू जितनी आग की चिनगारी पर भी मनुष्यों की श्रद्धा हो जाती है, उसीप्रकार ऋषि के कहने से थोड़ी आयु के कुमार

पर भी राजा जनक की आस्था होगई, और उन्होंने अपने सेवकों को शिव-धनुष दिखाने की आज्ञा दे दी। सोये हुए सर्पराज वासुकि के समान बड़े और भयानक धनुष को राम ने सहज भाव से पकड़ा, और आश्चर्य-चकित दर्शकों के सामने ऐसी सुगमता से उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी मानो कामदेव फूलों के चाप पर प्रत्यंचा चढ़ा रहा हो। प्रत्यंचा को चढ़ाकर राम ने खींचा तो धनुष बड़ी भीषण-ध्वनि के साथ टूट गया। वह ध्वनि इतनी ऊँची थी कि तपस्या करते हुए क्रोधी मुनि परशुराम के कानों तक पहुँचकर उसने मानो यह समाचार दे दिया कि क्षत्रियवंश फिर से जीवित हो उठा है।

मिथिला नरेश की प्रतिज्ञा थी कि जो वीर शिव-धनुष को उठा लेगा, वह उससे अपनी कन्या का विवाह करेगा। राम ने धनुष को न केवल उठाया, तोड़ भी दिया। शर्त पूरी हो जाने से प्रसन्न होकर, राजा जनक ने साक्षात् लक्ष्मी के सदृश गुणवती पुत्री सीता का विवाह राम से करने की अभिलाषा प्रकट की, और अग्नि के समान पवित्र ऋषि की साक्षी करके उसे राघव के अर्पण कर दिया। साथ ही जनक ने अपने पुरोहित को यह निवेदन करने के लिए अयोध्या नरेश दशरथ के पास भेजा कि आप मेरी कन्या को अपनी पुत्र-वधू के रूप में ग्रहण करके निमि-वंश को कृतार्थ कीजिए। राजा दशरथ राम के लिए गुणवती कन्या की तलाश में था ही, अनुकूल सन्देश लेकर पुरोहित के पहुँचने से वे बहुत ही सन्तुष्ट हुए, सज्जनों के संकल्प कल्पवृक्ष के फलों की भाँति शीघ्र ही परिपक्व होजाते हैं।

ब्राह्मण द्वारा मिथिलापति का सन्देश पाकर महाराज दशरथ ने मिथिला की ओर प्रयाण कर दिया, और कुछ ही दिनों में सेना सहित जनकपुरी में प्रवेश किया। वरुण और वासव के समान तेजस्वी दशरथ और जनक ने अपने पद और गौरव के अनुकूल धूमधाम के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न किया। राम का सीता से, उसकी छोटी बहिन उर्मिला का लक्ष्मण से, और माण्डवी और श्रुतकीर्ति का भरत और शत्रुघ्न से विवाह होगया। वे चारों भाई अनुरूप पत्नियों का पाणिग्रहण करके सफलता से युक्त साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों की भाँति, राजा की महिमा को बढ़ानेवाले होगये। जैसे प्रकृति और प्रत्यय के योग से शुद्ध और सार्थक पद बन जाता है, उसीप्रकार उन योग्य राजकुमारियों का योग्य कुमारों से योग भी कृतार्थता का कारण बन गया।

महाराज दशरथ ने चारों पुत्रों का विवाह कर के सेना सहित अपनी पुरी की ओर प्रस्थान किया। तीन पड़ाव शेष रहने पर मिथिलेश्वर अपनी राजधानी को वापिस होगये। अकस्मात् मार्ग में अनेक अशुभ लक्षण प्रकट होने लगे। जैसे बढ़ता हुआ पानी नदी के किनारों को क्लेश देने लगता है—वैसे ही वृक्षों को गिरा देनेवाला अन्धड़ सैनिकों के पाँव उखाड़ने लगा। सूर्य-मण्डल के चारों ओर भयावनी धारियाँ दिखाई देने लगीं। दिशायें मलिन हो गईं और जिस दिशा में सूर्य दीखता था, उसी दिशा में रक्त के प्यासे गीदड़ हाउ-हाउ करते सुनाई देने लगे। इन अशुभ लक्षणों को देखकर महाराज ने मुनि वसिष्ठ से प्रश्न किया तो उन्होंने आश्वासन देते हुए

कहा कि 'घबराओ नहीं, अन्त में परिणाम अच्छा होगा।'

थोड़ी देर में सेना के सामने तेज की एक राशि उठती हुई दिखाई दी। जब सैनिकों ने आँखें मलकर ध्यान से देखा तो एक तेजस्वी मनुष्य-मूर्ति दृष्टिगोचर हुई। वह मुनि परशुराम थे। उनके गले में पिता के अंश के रूप में यज्ञोपवीत पड़ा हुआ था, और हाथ में माता के अंश के रूप में विशाल धनुष था। मानो सौम्य चन्द्रमा के संग तीव्र आदित्य हो, अथवा ऐसा चन्दन का वृक्ष हो जिस पर सांप लिपटा हुआ है। उसने ऋषि मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले पिता की आज्ञा के अनुसार, डर से काँपती हुई माता का सिर काटकर पहले करुणा को जीता, और फिर क्रोध के आवेश में क्षत्रियों का संहार कर के सारी पृथ्वी को जीत लिया था। उसके दाहिने कान पर अक्ष के बीजों का जो कुण्डल लिपटा हुआ था, वह मानो इक्कीस बार क्षत्रियों के विनाश की गिनती का स्मारक था। एक ओर पिता जमदग्नि की हत्या से रुष्ट होकर क्षत्रिय जाति का संहार करने लिए दृढ़प्रतिज्ञ परशुराम पर, और दूसरी ओर अपने बालक पुत्र राम पर जब अयोध्यापति की दृष्टि पड़ी तो वह घबड़ा गया। उस समय राजा की दृष्टि दो रामों पर पड़ रही थी—एक शत्रु था और दूसरा पुत्र। उसे एक साँप की मणि के समान प्रतीत हुआ, तो दूसरा माला की मणि के समान। 'पूजा की सामग्री लाओ।' राजा की इस आज्ञा की उपेक्षा करके मुनि ने क्षत्रियों का दाह करनेवाली क्रूरदृष्टि से उसकी ओर देखा। फिर वह राम की ओर मुड़े। राम तब भी निर्भय था। मुनि ने एक हाथ में धनुष को लेकर, और दूसरे

हाथ की अंगुलियों में तीर को पकड़े हुए क्रुद्ध होकर कहा—

मेरे पिता की हत्या करने के कारण क्षत्रिय मेरे शत्रु हैं। उनका कई बार नाश करके मैं शान्त हो गया था, परन्तु सोये हुए साँप को जो दशा लाठी की ठोकर खाकर होती है, तेरे पराक्रम की कथा सुनकर मेरी भी वैसी ही दशा हुई है। तुमने मिथिलेश के उस धनुष को तोड़ डाला है जिसे अन्य राजा झुका भी नहीं सके थे। इस व्यतिक्रम से मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेरी शक्ति का सिर कट गया हो। पहले 'राम' इस नाम से संसार में केवल मेरा बोध होता था, अब तेरे बढ़ते हुए यश के कारण वह नाम मेरे लिये लज्जा का कारण बन गया है। जिस जमदग्न्य का अस्त्र क्रौंचपर्वत से टकराकर भी व्यर्थ नहीं हुआ था, उसके समान-रूप से अपराधी होने के कारण दो बड़े शत्रु हैं—पहला गौ के बछड़े का हरण करने के कारण हैहय और दूसरा मेरे यश को छीनने का यत्न करनेवाला तू! यदि मैं तुझे नहीं जीतता तो सब क्षत्रियों को नष्ट करने वाला अपना विक्रम भी मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अग्नि की यही तो प्रशंसा है कि वह जैसे जंगल में जलता है, वैसे ही समुद्र में भी देदीप्यमान होता है। यह समझ ले कि तूने समय द्वारा जर्जरित शिव के धनुष को तोड़कर कोई बड़ी बहादुरी का काम नहीं किया। जिस पेड़ की जड़ों को नदी के पानी ने खोखला कर दिया है, उसे हवा का हल्का-सा झोका भी गिरा देता है। युद्ध की जाने दे—मेरे इस धनुष को ले और शर चढ़ाकर इसे खींच दे। बस, इतने ही से मेरे समान बल-

वान् होने के कारण तू मुझे जीत लेगा। परन्तु यदि मेरे परशु की चमकती हुई धार से तू डर गया है तो धनुष की प्रत्यंचा खैंचने से कठोर अँगुलियोंवाले अपने इन निर्वीर्य हाथों को जोड़कर अभयदान माँग ले।

भार्गव के ये वचन सुनकर राम कुछ नहीं बोले, केवल होठों में थोड़ा-सा मुस्कराकर यही उत्तर दिया कि उनके हाथ से धनुष ले लिया। उस ऐतिहासिक धनुष को लेकर राम अत्यन्त शोभायमान दिखाई देने लगे। नया बादल स्वयं ही बहुत सुन्दर होता है, फिर जब उस पर इन्द्र-धनुष अंकित हो जाय तो शोभा का क्या कहना है!

राम ने पृथ्वी पर एक कोटि जमाकर जब उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी तो क्षत्रियों के शत्रु जामदग्न्य का तेज क्षीण हो गया—मानो अग्नि की ज्वाला नष्ट होगई हो और केवल धुआँ शेष रह गया हो। उस समय एक ओर बढ़ता हुआ राम और दूसरी ओर क्षीण होता हुआ राम—दोनों लोगों को ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सायंकाल के समय चन्द्रमा उदित हो रहा हो, और सूर्य डूब रहा हो। राम ने धनुष पर अमोघ वाण चढ़ा लिया। उधर मुनि एकदम उदास और क्षीण-बल होगये। यह देखकर राम को दया आगई, वह मुनि से बोले—

आप ब्राह्मण हैं। आपने मुझे अपमानित किया, तो भी आप पर निर्दय होकर प्रहार नहीं करना चाहता, परन्तु मेरा बाण अमोघ है। यह व्यर्थ नहीं जा सकता। आप बताइये कि इससे किस वस्तु को नष्ट करूँ? आपकी गति को

या आपके यज्ञों द्वारा प्राप्त किये स्वर्गलोक के द्वार को ?

उत्तर में ऋषि बोले--

भगवन्, यह नहीं कि मैं तुम्हारे स्वरूप को नहीं जानता था। मैं तो तुम्हारे मानव-शरीर में वैष्णव-तेज को प्रत्यक्ष देखना चाहता था। इस कारण मैंने तुम्हें उत्तेजित किया। मैंने अपने पिता के द्वेषियों को भस्मसात कर दिया था, और सारी पृथ्वी दान में दे दी थी, इतना कुछ कर लेने के पश्चात् प्रभु द्वारा मेरा पराजय भी प्रशंसनीय ही है। मैं अपने को धन्य मानता हूँ। भगवन्, मैं पुण्यतीर्थों का भ्रमण कर सकूँ, इसके लिए मेरी गति को सुरक्षित रहने दो। मैं सुख-भोग की ओर से उदासीन हो चुका हूँ, अतः मेरे स्वर्गद्वार को नष्ट कर दीजिये।

राघव ने मुनि की बात को स्वीकार कर लिया, और बाण को पूर्व की ओर छोड़ दिया, जिससे भार्गव के स्वर्ग जाने का मार्ग बन्द हो गया।

इसके पश्चात् राम ने धनुष एक ओर रख दिया, और ऋषि के पाँव पकड़कर क्षमा प्रार्थना की। शत्रु को जीतकर नम्र हो जाना ही वीरों के लिये यशस्कर होता है। मुनि राम और लक्ष्मण से बोले—माता से प्राप्त हुए शस्त्रभाव को त्यागकर मैं भी अब अपने पिता के शास्त्रभाव को ग्रहण करता हूँ। मुझ पर तुम्हारा यह दण्डप्रयोग भी वस्तुतः अनुग्रह के समान ही हुआ है। अब मैं विदा होता हूँ, तुम अपने देव-कार्य में लगो। यह कहकर ऋषि अन्तर्ध्यान होगये।

जामदग्न्य के चले जाने पर राजा ने राम को दूसरी बार

उत्पन्न हुआ मानकर प्रसन्नता पूर्वक गले लगाया, और कुछ दिनों की सुखमयी यात्रा के पश्चात् सजी हुई अयोध्यापुरी में प्रवेश किया।

१२.

लंकेश-वध

जैसे प्रातःकाल के समय दीपक की शिखा क्षीण होकर नष्टप्रायः हो जाती है, वैसे ही दशरथ भी अपने जीवन की अन्तिम दशा में पहुँच गया। मानो कैकेयी के डर से बुढ़ापे ने सफेद बालों के बहाने कानों के पास आकर अपना सन्देश दिया कि अब राज्यलक्ष्मी राम को दे दो। जैसे नदी से निकली हुई नहर उद्यान के वृक्षों को हरा-भरा कर देती है, राम के अभिषेक की चर्चा ने नगरवासियों को वैसे ही हर्षित कर दिया। अभिषेक के अवसर पर राम के स्नान के लिए आये हुए पवित्र जल को कठोर हृदयवाली कैकेयी ने अपने शोक-सूचक पार्थिव आँसुओं से अपवित्र कर दिया। महाराज ने जब उसे मनाने का यत्न किया तो उसने पहले दिए हुए दो वर उगल दिये---मानो वर्षा होने पर पृथ्वी ने किसी बिल से दो सांप उगल दिये हों। उसने पहले वर से राम को चौदह वर्षों के लिए वन में भिजवा दिया, और दूसरे वर से भरत के लिए राज्यलक्ष्मी माँग ली---वह राज्यलक्ष्मी तो मिल गई परन्तु उसका परिणाम इतना भयंकर हुआ कि पुत्र-वियोग में महाराज की मृत्यु होगई, जिससे कैकेयी को राज्यलक्ष्मी के

स्थान पर वैधव्य प्राप्त हुआ।

राम को जब राज्याभिषेक की आज्ञा मिली, तब यह सोचकर कि पिता वन को चले जाएँगे, उनके आँसू निकल आये, तदनन्तर जब वन जाने की आज्ञा मिली, तब आज्ञा-पालन करने का अवसर मिलने से प्रसन्नता पूर्वक उसे अंगीकार कर लिया। लोगों ने आश्चर्यान्वित होकर देखा कि पहले मंगलसूचक बहुमूल्यवान और पीछे बल्कल पहिनते समय राम के मुख की छवि में कोई भेद नहीं आया। पिता के सत्य की रक्षा के लिए वह सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण में चले गए। वन-प्रवेश के साथ ही वह सज्जनों के मन में भी प्रविष्ट होगए। राम के वियोग में राजा ने बहुत दुःखी होकर श्रवण कुमार के माता-पिता के शाप का स्मरण करते हुए शरीर-त्याग कर दिया।

राजा की मृत्यु होगई। बड़े राजकुमार को बनवास हो गया। जिस राज्य में राजा न रहे, वह राष्ट्र के धूर्त शत्रुओं का शिकार बन जाता है। यह सोचकर अनाथ प्रजाजनों ने ननसाल में गये हुए भरत को बुलाने के लिए दूतों को भेज दिया। उन दूतों ने किसी तरह अपने दुःख के आंसुओं को थामकर भरत को अयोध्या चलने का सन्देश दिया—परन्तु पिता की मृत्यु का समाचार नहीं सुनाया। भरत को राजधानी में पहुँचकर जब सब समाचार प्राप्त हुए तब वह न केवल अपनी माता से विमुख होगया, बल्कि राज्यश्री से भी विमुख हो गया। तब राम ने वनयात्रा में जिन वृक्षों के नीचे निवास किया था, उनको अश्रुभरे नेत्रों से देखता हुआ, भरत

सेनाओं के साथ चित्रकूट में राम आश्रम में पहुँचा, और पिता के स्वर्गगमन का वृतान्त सुनाकर यह निवेदन किया कि मैंने आपकी छोड़ी हुई राज्यलक्ष्मी को अब तक छुआ भी नहीं है, आप ही चलकर उसका उपभोग करें। भरत को ऐसा अनुभव हो रहा था कि बड़े भाई के अधिकार को छीनकर मानो वह वही असभ्यता करेगा जो कि बड़े भाई के रहते हुए विवाह करके छोटा भाई अपने बड़े भाई के प्रति करता है। जब भरत के बहुत आग्रह करने पर भी पिता के वचन की रक्षा के लिए राम ने वापिस जाना स्वीकार नहीं किया, तो राज्य का अधिदेवता बनाने के लिए भरत ने राम की खड़ाऊँ माँग लीं। राम ने उसकी इच्छा पूरी कर दी। भरत खड़ाऊँ लेकर राजधानी में प्रविष्ट न हुआ, और नन्दीग्राम में रहकर राम की धरोहर समझकर राज्य की रक्षा करने लगा। मानो वह अपनी तपस्या द्वारा माता के पाप का प्रायश्चित कर रहा था।

उधर राम वैदेही के साथ रहते हुए भी उस कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे थे, जिसका पालन इक्ष्वाकुवंश के राजा वृद्धावस्था में किया करते थे। एक दिन जंगल के भ्रमण से कुछ थककर राम सीता की गोद में सिर रखकर एक वृक्ष की छाया में सोये हुए थे कि एक दुष्ट कौए ने आकर सीता को आहत कर दिया। राम के जागने की आशंका से सीता ने हिलना उचित न समझा। कौए ने अवसर पाकर उनके चरणों पर चोंच से घाव कर दिये। तब राम की नींद खुली। क्रुद्ध होकर राम ने कौए पर एक सरकंडे का प्रहार किया,

जिससे उस आततायी की एक आँख जाती रही।

चित्रकूट अयोध्या के समीप ही था, राम को यह आशंका हुई कि कहीं भरत उससे घर लौटने का आग्रह करने के लिए फिर न आजाए, इस कारण उन्होंने उस सुन्दर हरिणों वाले चित्रकूट प्रदेश को छोड़कर आगे जाने का निश्चय किया। जैसे शीतऋतु में सूर्य दक्षिण की ओर प्रयाण करता है—वैसे राम ने भी मार्ग में ऋषि के आश्रमों पर पड़ाव करते हुए दक्षिण दिशा की यात्रा आरम्भ की। कैकेयी के निषेध करने पर भी मानो जानकी के रूप में राज्यलक्ष्मी, उनके पीछे-पीछे चलती हुई शोभायमान हो रही थी। मार्ग में अगस्त्याश्रम पड़ा, जहाँ देवी अनुसूया ने सीता को उपदेश और आदेश दिया। जंगल में जाते हुए एक दिन राम ने देखा कि चन्द्र को ग्रसनेवाले राहु के सदृश भयानक राक्षस रास्ते को रोककर खड़ा है। वह राक्षस आगे बढ़ा और दोनों भाइयों के बीच में से सीता को उठाकर ले चला। दोनों भाइयों ने उस आततायी को मार डाला, और इस विचार से कि लाश से दुर्गन्ध न फैले, उसे भूमि में गाड़कर दबा दिया। मुनि अगस्त्य की आज्ञा से वह वन के दक्षिण की ओर आगे बढ़ गये, और पंचवटी में पहुँचकर ठहर गये। श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे।

जैसे भयानक नागिन गर्मी से व्याकुल होकर चन्दन के वृक्ष की ओर भागती है, वैसे ही कामदेव के वशीभूत होकर रावण की छोटी बहन शूर्पणखा राम के पास जा पहुँची, और सीता के सामने ही राम से कहने लगी कि मुझसे शादी कर ले क्यों

कि मैं अति सुन्दरी हूँ। कामी व्यक्ति अवसर-अनवसर को नहीं देखता। संयमी राम ने कामान्ध राक्षसी को समझाते हुए आज्ञा दी कि हे बाले, मैं विवाहित हूँ, अन्य विवाह नहीं कर सकता। तू मेरे छोटे भाई के पास जाकर प्रार्थना कर।

दोनों किनारों का उपभोग करने का यत्न करनेवाली नदी को जैसे दोनों के बीच में मंडराना पड़ता है वैसे ही शूर्पणखा लक्ष्मण द्वारा भी तिरस्कृत होकर फिर राम की ओर भागी। सीता को यह देखकर हँसी आगई। इससे राक्षसी का क्रोध भड़क उठा और यह कहती हुई सीता पर झपटी कि तू हरिणी होकर व्याघ्री का मजाक उड़ाती है तो इसका फल पा। सीता पर आक्रमण करते समय विक्षोभ के कारण उसके नख सूप की तरह फैल गए, जिससे उसका वह रूप प्रगट हो गया, जिसके कारण वह शूर्पणखा कहलाती थी। जब लक्ष्मण ने उसका क्रोध में भरी शृगाली-सा भयानक स्वर सुना तो वह समझ गया कि कि उसका पहला कोयल के सदृश मधुरस्वर केवल ढोंग था। राक्षसी की चिल्लाहट सुनकर, हाथ में तलवार ले लक्ष्मण राम की झोंपड़ी में पहुँचे, और कान आदि काटकर उस कुरूपा को और भी अधिक कुरूपा बना दिया। तब वह लम्बे नखों वाली और बांस की भांति कठोर गांठोंवाली, अंकुश जैसी अंगुलियों से राम और लक्ष्मण को धमकाकर अपने जनस्थान की ओर भागी।

जनस्थान में पहुँचकर उसने खर-दूषण आदि राक्षसों को राम द्वारा राक्षसों के पराजय की यह नई कहानी सुनाई। इस पर राक्षसों ने राम पर चढ़ाई करने का निश्चय किया,

परन्तु उस समय उनके सामने शूर्पणखा की नाक-कान कटी सूरत आगई, यह भारी अमंगल होगया। राम ने जब हजारों राक्षसों की सेना को आक्रमण करते देखा तो सीता की रक्षा के लिये लक्ष्मण पर और विजय प्राप्ति के लिये अपने धनुष पर भरोसा किया। लक्ष्मण सीता को लेकर सुरक्षित स्थान में चले गये, और राम राक्षसों का संहार करने लगे। राम अकेले थे--और राक्षस हजारों--परन्तु डर के मारे प्रत्येक राक्षस को अपने सामने एक-एक राम दिखाई दे रहा था। पहले राम ने अवगुण के समान नाशयोग्य दूषण की सुध ली। फिर उन्होंने खर और त्रिशिरा को भी शरवर्षा का लक्ष्य बनाया। राम के तीर उनके शरीर में इतने वेग और लाघव से घुस गये कि जिस समय शरों के मुँह राक्षसों का जीवन नष्ट कर रहे थे, उनके पृष्ठभाग रुधिर का पान कर रहे थे। राम ने सभी राक्षसों को मार डाला, फलतः रणभूमि में कबन्ध ही कबन्ध दिखाई दे रहे थे। देवताओं के शत्रुओं की वह सेना राम के साथ युद्ध करके, मानो थककर सदा के लिये गृध्रों की छाया में सो गई।

जनस्थान के सब राक्षस मारे गये। उनके नाश के समाचार को रावण तक पहुँचाने के लिये केवल शूर्पणखा ही शेष बची थी। बहन के अंगच्छेद और प्रतिष्ठित राक्षसों के नाश का वृत्तान्त सुनकर रावण को ऐसा प्रतीत हुआ मानो राम ने उसके दसों मस्तकों पर पाँव रख दिया हो। मृग का रूप धारण किये हुए मारीच की सहायता से मायावी रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। मार्ग में जटायु ने विघ्न डाला

तो रावण ने उसे घायल कर डाला। जिस समय राम और लक्ष्मण सीता को आश्रम में न पाकर उसे ढूंढ़ने के लिये निकले, तब उन्होंने देखा कि उनके पिता दशरथ के मित्र जटायु ने अपने प्राण देकर मित्रता का ऋण चुकाया है। उसने अन्तिम श्वाँस लेते हुए बतलाया कि जानकी को रावण ले गया है। उसने जानकी की रक्षा के लिये जो महान् यत्न किया वह तो उसके गहरे घावों से ही प्रकट हो रहा था। दोनों भाइयों के हृदयों में, जटायु की मृत्यु से, अपने पिता का सारा दुःख फिर से जाग उठा, और उन्होंने उसकी अन्तिम क्रियाएँ पिता के समान ही कीं। जंगल में कबन्ध नाम का राक्षस विघ्नकारी हुआ तो राम ने उसका वध कर दिया। राम द्वारा आहत किये जाने पर सद्गति को प्राप्त होते हुए राक्षस ने राम को सुग्रीव का परिचय दिया। उसने बतलाया कि अपने भाई बालि द्वारा राज्य का अधिकार और स्त्री के छिन जाने से सुग्रीव भी दुःखी है। एक-से दुःखवाले सुग्रीव के साथ स्वभावतः राम के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न होगई, जो गहरी मित्रता के रूप में परिणित होगई।

राम ने बालि को मारकर सुग्रीव को उसका छिना हुआ राज्य और स्त्री तारा, दोनों ही वापिस दिला दिये। सुग्रीव के भेजे हुए दूत सीता की तलाश में, पृथ्वी पर चारों ओर घूमने लगे। मारुति से यह समाचार पाकर कि रावण सीता को लेकर लंका में चला गया है, हनुमान समुद्र को ऐसे तैर गये, जैसे योगी संसार को तैर जाते हैं। लंका में घुसकर हनुमान ने विषैली लताओं से

घिरी हुई जीवनौषधि की भाँति राक्षसियों से घिरी हुई सीता को देखा। हनुमान ने जानकी के सामने प्रकट होकर, परिचय के लिय उँगली से उतारकर दी हुई अँगूठी दी। उस समय वह अंगूठी ऐसी लग रही थी मानो पति के समाचार पाकर सीता की आँखों से निकले हुए शीतल आँसू ही स्थूल रूप में आगये हों।

इसप्रकार अपने सफल दौत्यकर्म से जानकी को प्रसन्न करके हनुमान ने लंका का नाश करने का संकल्प किया, और राजकुमार अक्ष का वध करके, ब्रह्मास्त्र द्वारा पकड़े जाने पर, रावण की सुनहली लंका को जलाकर राख कर दिया।

हनुमान ने लंका से लौटकर सीता की दी हुई निशानी। राम को दी तो राम को ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीता का हृदय स्थूल रूप धारण करके उन्हें प्राप्त हो गया है। प्रिया का समाचार प्राप्त करके, उसका उद्धार करने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ राम को मार्ग का समुद्र खाई के समान सुगम प्रतीत होने लगा। वह सुग्रीव की विशाल वानर-सेना को साथ लेकर, पृथ्वी और आकाश के मार्गों से समुद्र तट की ओर प्रस्थित हुए। वहाँ समुद्र-तट पर रावण का भाई विभीषण, सुमति से प्रेरित होकर राम से जा मिला, मानो लंका की राज्यलक्ष्मी ने अपनी रक्षा के लिये विभीषण के मस्तक में प्रवेश करके उसे राम की शरण में जाने के लिये प्रेरित कर दिया था। राम ने उसे यह आश्वासन दे दिया कि रावण को मारकर लंका का राज्य तुम्हें दे दूंगा। समय-समय पर प्रयोग की हुई नीति प्रायः सफलता प्राप्त करती

है । राम ने वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल तैयार कर दिया । वह सेतु ऐसा प्रतीत होता था, मानो विष्णु के सोने के लिये, समुद्र में से निकलकर साक्षात् वासुकि बिछ गया हो ।

वानर-सेना द्वारा बनाये गये सेतु से समुद्र को पार करके राम के सुनहरे रंग के सैनिकों ने लंका को घेरकर उसके चारों ओर दूसरा प्राकार-सा बना दिया । तब राक्षसों और वानरों की सेना का भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ । वानर-सेना राम के जयकारों से और राक्षस-सेना रावण के जयकारों से आकाश को गूंजा रही थी । वह युद्ध अद्‌भुत था । परिघ का जवाब उखाड़कर फैंके हुए पेड़ से दिया जा रहा था, मुद्‌गर शिला से पिस रहा था, नाखूनों के आघात शस्त्रों के आघात को मात कर रहे थे, और हाथी का प्रहार पहाड़ से तोड़ा जा रहा था । रावण ने युद्ध में हार होते देखकर सीता को अपने वश में लाने का प्रयत्न किया, परन्तु त्रिजटा नाम की राक्षसी ने सीता की दशा पर तरस खाकर उसे सच्चा बात बता दी । यह भ्रम हो जाने पर कि राम नहीं रहे, सीता को अपना जीवन बोझ-सा प्रतीत होने लगा था । जब त्रिजटा के कथन से उनका भ्रम दूर हो गया तो वह संतुष्ट होकर राम के विजय की प्रतीक्षा करने लगी । रावण का पुत्र मेघनाद शस्त्रास्त्रों में परम प्रवीण था । उसने सर्पास्त्र का प्रयोग करके राम और लक्ष्मण को बाँधने का प्रयत्न किया, परन्तु गरुड़ास्त्र के प्रयोग ने इनके बंधन खोल दिये, और अस्त्र द्वारा बँधने की घटना स्वप्नमात्र रह गई । सर्पास्त्र के व्यर्थ

हो जाने पर मेघनाद ने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार किया, जिसने लक्ष्मण को तो मूर्छित किया ही, उस दुःख में राम को भी मूर्छित कर दिया।

यह बताने पर कि पर्वत से उत्पन्न होनेवाली महोषधि से लक्ष्मण की मूर्छा जा सकती है, वीर हनूमान पर्वत से औषध ले आया, जिससे लक्ष्मण की मूर्छा दूर होगई, और वह फिर लंका के राक्षसों का संहार करने लगे। जैसे शरद्-ऋतु बादलों के गर्जन और उनपर दीखनेवाले इन्द्र-धनुष को समाप्त कर देती है, लक्ष्मण ने भी मेघनाद को मार कर उसके वीर गर्जन और धनुष दोनों का ही अन्त कर दिया, तब रावण का भाई कुम्भकर्ण रणक्षेत्र में उतरा। जब सुग्रीव ने कान-नाक काटकर उसे शूर्पणखा के समान कर दिया, तब रक्त बहने से लालशिलाओं वाले पर्वत के समान वह राक्षस राम पर टूटा। भाई रावण ने तुम्हें व्यर्थ ही नींद से जागने का कष्ट दिया——मानो यह कहते हुए राम के बाणों ने उसे शीघ्र ही अटूट नींद में सुला दिया।

राक्षसों की अन्य सेनायें भी युद्धक्षेत्र में आकर, वानरों की सेना में ऐसे विलीन होती गईं, जैसे राक्षसों के रुधिर-जल में पड़कर युद्धभूमि की धूलि। तब इस हठ के साथ कि संसार में रावण रहेगा या राम, रावण स्वयं युद्ध के लिये उद्यत होकर राजभवन से निकला। रावण रथ पर आरूढ़ होकर मैदान में आया था, और राम पैदल थे। यह देख कर देवताओं के राजा इन्द्र ने अपना कपिलवर्ण के घोड़ोंवाला विशाल रथ राम के लिए भेज दिया। आकाश-गंगा के जल के

सम्पर्क से शीतल पवन मे आन्दोलित ध्वजावाला वह देव-रथ जब रणक्षेत्र में पहुँचा तो राम उसके सारथि मातलि के कन्धे पर हाथ रखकर उस'ार चढ़ गये। मातलि महेन्द्र का असुरजयी कवच भी लाया था। उसने वह राम को पहिना दिया। चिरकाल से राम और रावण के पराक्रमों की प्रतिस्पर्द्धा-सी चल रही थी। आज युद्धभूमि में जय-पराजय का निर्णय होने का अवसर आने से मानो उस परस्पर दर्शन में सफलता आगई। भाई, पुत्र और अन्य सहायकों के मर जाने से अकेला भी रावण मुँह, भुजा और पांव की अनेकता के कारण मानो राक्षसी माता के वंश के सदृश दिखाई दे रहा था। जिसने सब लोकपालों को जीत लिया था, और अपने मुखों की बलि देकर जिसने शिव को प्रसन्न किया था, उस पराक्रमी रावण को युद्ध के लिए सामने खड़ा देखकर राम के हृदय में आदर का भाव उत्पन्न हुआ। युद्ध आरम्भ हुआ। मानो युद्ध की समाप्ति और सीताप्राप्ति की सूचना देने के लिये फड़कती हुई राम की दहिनी भुजा पर रावण ने बाण का प्रहार किया। उत्तर में राम ने जो बाण रावण के हृदय को लक्ष्य करके चलाया, वह अपना काम करके मानो सर्पलोक में रावण के अनिष्ट का समाचार सुनाने के लिए पृथ्वी में प्रविष्ट हो गया। जैसे वाद-विवाद में वादी और प्रतिवादी एक-दूसरे के वाक्य को काटते हैं, वैसे ही युद्ध में उनके घात-प्रतिघात होने लगे, और युद्ध का आवेग बढ़ गया। मस्त हाथियों की भांति जय के अभिलाषी उन दोनों वीरों का जोर बारी-बारी से घटता और बढ़ता था, जिससे उनके मध्य में

जय-श्री डांवांडोल हो रही थी। रावण ने राम पर फौलाद की बनी हुई शक्ति का प्रहार किया। राम ने रास्ते में ही अपने अर्धचन्द्राकार बाणों से उसे और राक्षसों की आशा को एक ही साथ ऐसे सुख से काट डाला जैसे केले के तने को काट डालते हैं। संसार के उस सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी राम ने सीता के वियोग से होनेवाले दुःखरूपी कील को निकालने वाली महोषधि के सदृश ब्रह्मास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और रावण की ओर छोड़ दिया। खुले हुए विकराल फणमण्डल से युक्त सर्पराज के समान ज्योति को उगलता हुआ वह ब्रह्मास्त्र क्षण भर में आकाश में सैंकड़ों धाराओं में बँटकर फैलता हुआ दिखाई दिया और फिर आधे क्षण में उसने अनायास ही रावण के सिर काटकर भूमि पर गिरा दिये।

रावण के कटे हुए रक्त में सने और सिसकते हुए सिर भूमि पर पड़कर ऐसे दिखाई दे रहे थे, मानो प्रभात के लाल सूर्य के प्रतिबिम्ब जल में चमक रहे हों। वे सिर कटकर भी देर तक ऐसे तेजस्वी रहे कि देवताओं को उनके जीवित होने का सन्देह बना रहा।

संसार को पीड़ा देनेवाले रावण के वध से प्रसन्न होकर देवता राम पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। इन्द्र का सारथि मातलि युद्ध समाप्त होने पर दाशरथि की आज्ञा प्राप्त करके देवरथ वापिस ले गया, और राम ने भी अग्निपरीक्षा द्वारा सीता की विशुद्धता घोषित करके, सीता, सुग्रीव तथा लक्ष्मण के साथ अपने भुजबल से जीते हुए पुष्पकविमान पर

आरूढ होकर, अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। प्रस्थान करने से पूर्व लंका का राज्य अपने प्रियमित्र विभीषण को सौंप दिया।

१३.

भरत-मिलाप

विमान द्वारा आकाशमार्ग से अयोध्या की दिशा में जाते हुए भगवान् राम को जब समुद्र दिखाई दिया तो वह अपनी सहधर्मिणी से कहने लगे—

सीते देखो, मेरी सेना के बनाये सेतु ने लंका से मलयाचल तक फेनिल समुद्र को दो भागों में बाँट दिया है, मानो शीतकाल के स्वच्छ आकाश को छायामार्ग की नीली धारा ने तारों से जगमगाते हुए आकाश को बीच में से काट दिया हो। महाराज सगर के अश्वमेध यज्ञ के अश्व का अपहरण होने पर, उसको ढूँढ़ते हुए हमारे पूर्वज सगर-पुत्रों ने कपिल मुनि के आश्रम तक पहुँचने के लिए इसे खोदकर बड़ा किया था। यह समुद्र संसार का बहुत उपकार करता है। सूर्य की किरणें वर्षा के लिए इससे जल लेती हैं, इसके गर्भ में रत्न पनपते हैं, वाड़वाग्नि इसमें शरण पाती है, और इसने आनन्दित करनेवाले प्रकाश से युक्त चन्द्रमा को जन्म दिया है। भगवान् विष्णु की तरह कभी शान्त और विश्रब्ध, कभी उतार पर और कभी चढ़ाव पर, इस प्रकार परस्पर-विरुद्ध अनेक अवस्थाओं और विशेषताओं से युक्त होने के कारण इस सागर

का रूप बुद्धि से भी परे है।

वह देखो, नदियाँ इसमें प्रवेश कर रही हैं। जब जीव-जन्तुओं को लेकर नदियों का जल इसमें पड़ने लगता है। तब व्हेल मछलियाँ सामने अपना मुँह खोल देती हैं। वे जन्तुसहित जल-धाराओं को अन्दर ले लेती हैं, और फिर केवल जन्तु को मस्तक में विद्यमान श्वांस के छिद्रों में से निकाल देती हैं। दूसरी ओर देखो, पानी में से उछलते हुए हस्ति समान मगरमच्छ हैं, जिनके द्वारा दो भागों में विभक्त हुआ समुद्र का झाग उनके कपोलों पर क्षण भर के लिए चँवर की भांति शोभायमान होता है। वह मेघ इसमें जल पीने आया है, और वायु में भँवर की तरह घूम रहा है। देखने में ऐसा लगता है, मानो फिर दूसरी बार पर्वत द्वारा समुद्र का मन्थन हो रहा हो।

और वह दूर देखो, लोहे के चक्र के समान नीले समुद्र के तट पर तमाल और ताली के जंगलों की श्रेणियों के कारण नीली भूमिवाला समुद्र तट दिखाई दे रहा है। यह लो विमान के वेग के कारण हम मुहूर्तभर में समुद्र तट के ऊपर पहुँच गये। यहाँ रेत पर टूटी हुई सीपियों में से मोती बिखरे पड़े हैं, और फलों से लदे हुए मूंगवृक्ष शोभायमान हो रहे हैं। हे मृगनयनी, जरा पीछे की ओर देखो। ऐसा प्रतीत होता है मानो पीछे छूटते हुए समुद्र के गर्भ में से वनों के साथ-साथ पृथ्वी निकल रही है। दूर होता हुआ समुद्र वन-विभूषित पृथ्वी को अपने अन्दर से बाहिर फैंक रहा है। यह पुष्पक विमान कभी बादलों के मार्ग से जाता है तो कभी

पक्षियों के मार्ग से। जैसे-जैसे मेरी अभिलाषा चलती है, वैसे-ही-वैसे इस विमान की गति में परिवर्तन होता है।

अब हम समुद्र से दूर जा रहे हैं। मध्यान्ह का समय हो रहा है। ताप के कारण तुम्हारे मुख पर पसीने की जो बूँदें आरही हैं, आकाश-गंगा के जल से शीतल, और महेन्द्र के हाथी ऐरावत के मद से सुगन्धित, आकाश-वायु उन्हें पोंछ रहा है। तुमने कौतूहल से अपना हाथ विमान की खिड़की से डालकर बादल को छुआ तो वह डरकर तुम्हें प्रसन्न करने के लिए अपनी विद्युत् की लता को तुम्हारे गले में हार की तरह पहिना रहा है। अब हम जनस्थान के ऊपर पहुँच गये हैं। रावण की मृत्यु के कारण निर्भय होकर वल्कलधारी तपस्वी लोग बहुत काल से छोड़ी हुई अपनी पत्तों की झोंपड़ियों को फिर से आबाद कर रहे हैं। यह वह स्थान है, जहाँ तुम्हें ढूँढ़ते हुए मैंने मानो, तुम्हारे वियोग के दुःख से चुपचाप पड़ा हुआ एक नूपुर देखा था। हे भीरू,जब मैं वृक्षों और लताओं से यह पूछता फिरता था कि सीता कहां गई तब मुँह से न बोल सकने के कारण ये लतायें मानो अपने पत्तों के बोझ से दबी हुई शाखाओं से मुझे वह मार्ग बतला रही थीं जिससे तुम्हें राक्षस उठा ले गया था। हरिणियाँ मुझे व्याकुल देखकर कुशांकुर खाना छोड़कर, बड़ी-बड़ी आँखों से दक्षिण दिशा की ओर देखती हुई, मानो मुझे तुम्हारा मार्ग बतलाती थीं। यह सामने माल्यवान् पर्वत की आकाश को छूनेवाली चोटी दिखाई देती है, जहाँ नये मेघों ने पानी और मेरी आँखों ने वियोग के आँसू साथ ही साथ बर-

साये थे। इस पर्वत पर तुम्हारे बिना रहते हुए बरसात के दिनों में वर्षा की जल-धाराओं से चोट खाये हुए जौहड़ों का गन्ध, नीप के अधखिले फूल, और मयूरों की मीठी केकायें भी मुझे कष्टप्रद प्रतीत होती थीं। वह देखो, तटवर्ती वेत के झुरमुटों से आलिंगित और अस्पष्ट दिखाई देनेवाले चंचल सारसों से सुशोभित पम्पा का जल दिखाई देता है, वे सब सुन्दर हैं परन्तु साथ ही तुम्हारे वियोग का स्मरण करानेवाले हैं, इस कारण उन पर पड़ी हुई दृष्टि सुगमता से हटने का साहस नहीं करती। इस पम्पासर में जब मैं चकवा और चकवी को एक-दूसरे पर फूलों की केसर डालते देखता था, तब तुम्हारी याद आती थी। यह गोदावरी नदी है। हमारे विमान में लगी हुई घंटियों का स्वर सुनकर, नदी तट की सारसें अपने साथियों के स्वर के भ्रम से, आकाश में उड़कर मानो तुम्हारा स्वागत कर रही हैं।

अब हम पंचवटी के पास पहुँच गये। यहाँ कोमल शरीर होते हुए घड़ों के पानी से सींचकर तुमने आम के पेड़ों को बड़ा किया था। यहाँ के कृष्णसार मृग इस समय भी मानो पूर्व-परिचय के कारण ऊपर की ओर देख रहे हैं। तुम्हारी मधुर-स्मृतियों के कारण यह स्थान आज भी मेरी दृष्टि को आनन्दित कर रहा है। मुझे याद आता है कि एक बार मैं शिकार करके थका हुआ आया था, और गोदावरी के तट पर वानीर के कुंज में, तुम्हारी गोंद में सिर रखकर लेटा था, तब शीतल वायु से भी थकान उतर गई थी और मैं सो गया था। क्रोध में आते हुए जिस ऋषि के माथे की केवल सिकुड़न ने नहुष को

स्वर्ग से नीचे गिरा दिया था, उस अगस्त मुनि का पृथ्वी की मलिनता को विशुद्ध करने के निमित्त से बनाया हुए भौम आश्रम यहीं पर है। उस विशुद्धकीर्ति ऋषि के त्रेताग्नि के यज्ञकुंडों से उठा हुआ गगनव्यापी सुगन्धित धुंआ यहाँ तक भी पहुँच रहा है। जिसे सूंघकर मेरी अन्तरात्मा शान्ति का अनुभव कर रही है।

और वह देखो, जंगलों से घिरा हुआ शप्तकर्णि मुनि का पंसाप्सर नाम का क्रीडासर ऐसे शोभायमान हो रहा है मानो मेघों के बीच में चन्द्रमा हो। यहां चारों यज्ञाग्नियों के बीच में समाधिस्थ मुनि सुतीक्ष्ण तपस्वी कर रहे हैं। चारों ओर अग्नि है, माथे को सूर्य की तीव्र किरणें तपा रही हैं। यह मुनि नाम से सुतीक्ष्ण होता हुआ भी स्वभाव में सर्वथा शान्त है। अप्सराओं ने इसके तप का भंग करने के निमित्त अनेक भाव-भंगियाँ दिखाईं, परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौन-व्रती होने के कारण मेरे नमस्कार को सिर हिलाकर अंगीकार करके, विमान के सामने से हट जाने पर ऋषि ने अपनी दृष्टि फिर सूर्य की ओर लगा दी है। वह जो शरणागतों की रक्षाकरने वाला नन्दीवन दिखाई दे रहा है, वहाँ शरभंग ऋषि ने चिरकाल तक समिधाओं से यज्ञाग्नि को तृप्त करके अन्त में अपने वेदपाठ से पवित्र शरीर की भी आहुति देदी थी। ऋषि के पीछे आश्रम में आनेवाले अतिथियों की सेवा का भार शीतल छाया और उत्तम फलों से युक्त वृक्षों पर पड़ा है, जो सुपुत्रों की भाँति उसे निभा रहे हैं।

वह चित्रकूट पर्वत है। उसकी नासा के समान गुफाओं से

झरनों का निर्झर नाद सुनाई दे रहा है और शृंगों की सदृश चोटियों पर मंडराते हुए बादल कीचड़ के समान प्रतीत होते हैं। मस्त सांड की भाँति मस्तक उठाकर खड़े हुए उस पर्वत पर आँखें मानो बँध जाती हैं। पास ही मन्दाकिनी नदी बह रही है, जो शान्तभाव से चलने और दूरी के कारण सूक्ष्म दीखने के कारण भूमि के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला के सदृश दिखाई देती है। और पर्वत के समीप ही वह तमाल का वृक्ष है, जिसकी सुगन्धयुक्त कोंपलें लेकर तुम्हारे जौ के समान रंगवाले कपोल की शोभा बढ़ाने वाला केशों का जूडा बांध दिया था। वह आगे अत्रिमुनि का आश्रम है। मुनि के तपोबल से निर्भय हो जंगली जन्तु सौम्य बने रहते हैं, और पुष्पों के बिना ही वृक्ष फल देते हैं। इस आश्रम के वृक्ष भी प्रशान्तमुद्रा के कारण समाधि में बैठे हुए मुनियों के समान प्रतीत होते हैं। वह जोहड़ का वृक्ष फलवान् होने से गरुड़ के रंग की मणियों से जड़ा हुआ दिखाई देता है। यह वही वृक्ष है जिससे तुमने विनयपूर्वक प्रार्थना की थी कि मेरा पति अपने व्रत को कुशलतापूर्वक पूरा करे।

वह आगे गंगा-यमुना का संगम स्थान है। गंगा के श्वेत और यमुना के कृष्णवर्ण जल के मिलने से अद्भुत शोभा उत्पन्न होती है। कहीं इन्द्रनीलमणियों से जड़ी हुई सफेद मोतियों की माला दिखाई देती है तो कहीं नीले रंग के उत्पलों से गुथी हुई श्वेत कमलों की पंक्ति दृष्टिगोचर हो रही है। कहीं छाया में छिपी हुई चाँदनी-सी छवि छटक रही है, तो

कहीं रिक्तस्थानों में से दीखनेवाले नीले आकाश के प्रदेशों के कारण चितकबरे श्वेतमेघों की पंक्ति-सी भासित हो रही है। समुद्र की इन दोनों सहधर्मिणियों के परस्पर संगम में स्नान करके मनुष्य तत्वज्ञान को प्राप्त किये बिना भी शरीर के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। और यह निषादों के राजा गुह की नगरी आगई, जहां मैंने मस्तक पर से मुकुट उतारकर जटायें बाँधी थीं, तब रोकर सुमन्त ने कहा था——'कैकेयि, आज तेरी कामनायें सफल हो गईं।'

सीते! यह ब्रह्मसर है, और उसके आगे अयोध्या के पास बहनेवाली सरयूनदी है, जिसके जंगलों में इक्ष्वाकुवंश के राजा अश्वमेध यज्ञों के अवसरों पर स्नान के लिए उतरते रहे हैं, और जिसके तट पर आज भी यज्ञ के यूप खड़े हुए हैं। यह सरयू उत्तर कोसल देश के निवासियों को अपने जलरूपी दुग्ध से पालकर बड़ा करती रही है, इस कारण मेरे हृदय में इसके प्रति धात्री की सी भावना है। इसकी उठती हुई तरंगों को देखकर मुझे भान होता है कि मान्यस्वामी वियुक्त मेरी माता के समान यह भी हाथ फैलाकर मुझे गोद में ले रही है। वह देखो, सायंकालीन संध्या के समय की भांति अन्तरिक्ष लाल-लाल हो रहा है। मैं समझता हूँ कि हनुमान से हमारे आने का समाचार पाकर सेनासहित भरत मेरी अगुवानी को आरहा है। प्रतीत होता है कि जैसे खरादि राक्षसों को मारकर लौटने पर लक्ष्मण ने सर्वथा सुरक्षित और पवित्र दशा में तुम्हें मेरे हाथ में सौंप दिया था, उसीप्रकार प्रतिज्ञा का पालन करके घर लौटने पर यह तपस्वी अछूती राज्य-

लक्ष्मी को मुझे सौंप देगा।

वह देखो, सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा है। आगे गुरु-वसिष्ठ हैं, पृष्ठ भाग में सेना है। मध्य में बूढ़े मन्त्रियों के साथ मुनि वेषधारी भरत अर्घ्य की सामग्री हाथ में लिए आरहा है। मेरी अपेक्षा कम आयु का होने पर भी इसने मेरे प्रति प्रेम के कारण पिता द्वारा छोड़ी हुई राज्यलक्ष्मी का उपभोग न करके असिधाराव्रत का पालन किया है।

जब राम के यह वचन समाप्त हुए, तो स्वामी की इच्छा-नुसार पुष्पकविमान आकाश से भूमि पर उतर आया। भरत की अनुयायिनी प्रजा ऊपर उठाये नेत्रों से उस अद्भुतविमान को देख रही थी। विभीषण रास्ता दिखाता हुआ पहले उतरा। सेवा में प्रवीण सुग्रीव ने उतरने के लिये हाथ का सहारा दिया। इसप्रकार स्फटिकों की सुन्दर सिढ़ियों पर पाँव रखते हुए राम विमान पर से भूमि पर उतरे। पहले राम ने इक्ष्वाकुवंश के गुरु ऋषि वसिष्ठ को प्रणाम किया, फिर अर्घ्यग्रहण करके सजल नेत्रों से तपस्वी भरत को गले लगाया, और सिर पर सूँघा! लटकती जटाओं वाले बड़ के पेड़ों के समान लम्बे लम्बे बालों वाले मन्त्रियों के प्राणाम का प्रेम-पूर्ण दृष्टि और कुशल-प्रश्न द्वारा उत्तर दिया। राम ने 'यह वानरों का राजा मेरा आपत्ति के समय का बन्धु है।' और 'यह युद्ध में आगे बढ़कर वार करने वाला पौलस्त्य है' इन शब्दों के साथ जब सुग्रीव और विभीषण का परिचय कराया तो भरत ने भाई लक्ष्मण को छोड़कर पहले उन दोनों को प्रणाम किया। उसके पश्चात् भरत लक्ष्मण की ओर मुड़ा। पांव पड़े

हुए लक्ष्मण को हाथों से उठाकर उसने छाती से लगाया, और उसके मेघनाद के प्रहारों के कारण कठोर सीने को अपने सीने से दबाया।

तब भारत को साथ लेकर राम फिर विमानपर आरूढ़ हो गये। वहीं महावाराह द्वारा जल-प्रलय से उद्धार की हुई पृथ्वी और शीत ऋतु द्वारा मेघों के फन्दे से छूटी हुई चन्द्र की प्रभा की भांति राम द्वारा आपत्तियों से मुक्त की हुई धैर्यमूर्ति सीता विराजमान थीं। भरत ने उन्हें प्रणाम किया। रावण के बारबार झुकने पर भी सीता के जो चरण धर्म पर अडिग रहे, उन पर बड़े भाई से किये हुए प्रण का पालन करने से जटाधारी दृढ़-व्रती भरत का मस्तक झुक गया। यह संयोग उन दोनों के लिए और भी अधिक पवित्र करने वाला बन गया।

लगभग आधा कोस तक राम का विमान बहुत धीरे-धीरे चलकर अयोध्या के समीप उद्यान में ठहर गया। वहां पूजा की सामग्री लिये शत्रुघ्न पहले से पहुँचा हुआ था। सब लोग उस स्थान पर विमान से उतर गये।

१४.

वैदेही वनवास

अयोध्या के उपवन में पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने एकमात्र आश्रय वृक्ष के कटने से निराधार लताओं के समान वैधव्य-शोक से मुरझाई हुई माताओं के दर्शन किये। शत्रुओं का विनाश करके आये हुए दोनों पुत्रों ने जब अपनी माताओं को प्रणाम किया, तो अश्रुओं के कारण दृष्टि के रुक जाने से वे दृष्टि से देख ही न सकीं। हाँ, पुत्रस्पर्श की स्वाभाविक अनुभूति से उन्होंने पहिचान लिया। जैसे गर्मी से तपे हुए गंगा और सरयू के जल को पहाड़ से आया हुआ बर्फानी जल शीतल कर देता है, वैसे ही उनके पति-वियोग के गर्म आँसुओं को पुत्रप्राप्ति के शीतल आँसुओं ने शान्त कर दिया। जब माताओं ने पुत्रों के शरीरों को छूकर देखा तो स्थान-स्थान पर राक्षसों के शस्त्रों द्वारा किये हुए घाव प्रतीत हुए। उस समय उन्होंने अनुभव किया कि क्षत्राणी के लिये वीर माता बनना केवल सुखकर ही नहीं है, दुःखकर भी है। 'मैं अपने पति के दुःखों का मूलहेतु होने के कारण कुलक्षणा सीता प्रणाम करती हूँ।' यह कहती हुई सीता स्वर्गवासी श्वशुर की रानियों के चरणों में अभेदभाव से झुक गई।

बेटी उठ, दोनों भाई तेरे शुद्ध चरित्र के कारण ही इस महान् संकट से पार हो सके हैं। ऐसा सुमधुर सत्यवाक्य कहकर माताओं ने सीता को आश्वासन दिया। उसके पश्चात्-माताओं के आनन्दाश्रुओं से राम का जो अभिषेक आरम्भ हुआ था, वृद्ध आमात्यों ने उसे तीर्थों से लाये हुए जल के स्वर्णघटों द्वारा पूरा कर दिया। जब राक्षसों तथा वानरों द्वारा लाये हुए समुद्र, नदी और तालाबों के जल से राम को स्नान कराया गया तब वह मेघों से बरसते हुए जल से स्थापित विन्ध्याचल के समान शोभायमान हो रहा था। वन को जाते हुए जो राम तपस्वियों का वेष पहिनकर भी अत्यन्त सुन्दर दिखाई दिये थे, राज्याभिषेक के योग्य वेष-भूषा धारण करके उनकी शोभा द्विगुणित हो उठी। जब राज्याभिषेक के पश्चात् राजा राम ने अपने आमात्य राक्षस और वानर मित्रों तथा सेनाओं के साथ कुल की पुरातन राजधानी अयोध्या में प्रवेश किया, तब हर्षसूचक तूर्य आदि वाद्यों से आकाश गूँज रहा था, जो कि प्रजाजन के हृदयों में आनन्द की लहरें उत्पन्न कर रहा था। मकानों की छतों से लाज-वर्षा हो रही थी, और सारी नगरी तोरणों से सजी हुई थी। रथ में विराजमान राम के सिर पर लक्ष्मण चँवर डुला रहे थे, और भरत ने छत्र धारण किया हुआ था। रघुवीर की सहधर्मिणी सीता को श्वश्रुजनों ने वस्त्रों और अलंकारों से खूब सजा दिया था। वह राम-रथ के साथ छोटे से सुन्दर रथ में बैठकर जा रही थीं। साकेत की महिलायें घरों के वातायनों में से उस तपोमयी देवी को हाथ

जोड़कर नमस्कार कर रही थीं। मुनि पत्नी अनुसूया द्वारा दिये हुए न नष्ट होनेवाले अंगराग से जगमगाती हुई तेजस्विनी जानकी को नगर निवासियों ने उसी दीप्तिमय रूप में देखा जिसमें परीक्षा के समय अग्नि से घिरे होने पर राम ने देखा था। सब प्रकार की आराम देनेवाली सामग्री से सजे हुए भवनों में सुग्रीव, विभीषण आदि मित्रों के ठहरने की व्यवस्था करके जब राम ने अपने पिता के उस भवन में प्रवेश किया, जिसमें पिता केवल चित्ररूप में विराजमान थे। तब उनकी आँखों में आँसू आगये। कैकेयी लज्जा और संकोच के कारण राजभवन से बाहर नहीं गई थी। भवन में प्रवेश करके राम ने उसके चरणों में झुककर प्रणाम किया और उसकी लज्जा को दूर करने के लिये कहा—माता, यदि हमारे पिता सत्य से भ्रष्ट न होकर स्वर्ग के अधिकारी बने रहे, तो यह तुम्हारे ही सुकृत् का फल था।

राज्याभिषेक की विधि समाप्त होने पर महाराज राम ने सब अभ्यागतों का यथोचित आदर-सम्मान किया। सुग्रीव विभीषणादि मित्रों को भाँति-भाँति के बहुमूल्य उपहार से सन्तुष्ट किया और ऋषि-मुनियों का कथा-श्रवण और पूजन द्वारा अभिनन्दन करके उन्हें विदा किया। मुनियों के जाने पर स्वयं सीतादेवी ने उन राक्षसों और वानरों को जिनके अयोध्यावास के दिन सुखपूर्वक रहने के कारण क्षण की तरह व्यतीत हो गये थे, विविध पारितोषिकों से सम्मानित करके अपने-अपने घरों को लौटने की अनुमति दे दी। कैलास के स्वामी कुबेर ने अपना पुष्पक विमान रावण नाशरूपी जिस

उद्दश्य की पूर्ति के लिये भेजा था, वह पूरा हो गया। यह सोचकर महाराज ने विमान को अपने स्वामी के पास जाने की आज्ञा दे दी।

वनवास से निवृत्त होकर, और विधिपूर्वक सिंहासन पर आरूढ़ होकर राम अर्थ, धर्म और काम तीनों का समान रूप से पालन करने लगे। सब भाइयों और माताओं में भी वह एक-सा प्रीतिभाव रखते थे। महाराज राम लोभ से शून्य थे इस कारण प्रजा समृद्ध थी। वह शत्रुओं का विनाश करते थे, फलतः देश में यज्ञादि क्रियायें निर्विघ्न होती थीं। वह नियमों का पालन कराते थे, अतः प्रजा उन्हें पिता मानती थी, और वह उनकी सेवा करते थे। इससे देश के निवासी अपने को पुत्रवान् मानते थे। राम दिन-रात प्रजा के पालन में लगे रहते थे, साथ ही वह गृहस्थधर्म के पालन में भी प्रमादी नहीं थे। साक्षात् शरीरधारिणी लक्ष्मी के समान शान्तिमयी पत्नी जानकी उसकी धर्म, अर्थ और काम प्राप्ति की संगिनी बनी हुई थी। राम ने अपने भवन में वनवास की घटनाओं के चित्र बनवाये थे। उन्हें देखकर दोनों ने व्यतीत दुःखों का स्मरण करके सन्तोष-सा अनुभव किया।

कुछ समय पश्चात् सीता के नेत्रों की बढ़ी हुई मधुरता और मुख पर छाई हुई सफेदी को देखकर राम ने समझ लिया कि वह गर्भिणी है। अक्षरों के बिना कहे हुए इस समाचार से राम का हृदय अत्यन्त आनन्दित हुआ। जानकी का सिर गोद में लेकर, एकान्त में राम ने दोहद लक्षणों से युक्त जानकी से कहा कि तुम अपने मन की अभिलाषा बताओ, मैं उसे

पूरा करूँगा। सात्विक भावों की पुतली सीता ने उत्तर दिया कि मेरा मन गंगा-तट पर बने हुए उन कुशाग्रों वाले तपोवनों में जाने को करता है, जहाँ हिंसक जन्तु भी वनस्पति खाकर सन्तोष करते हैं और जहां तपस्वियों की कन्याओं से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित होता है। राम प्रिया से इस इच्छा को पूरा करने का वायदा करके अपने विश्वस्त पुरुषों के साथ प्रसन्नता से भरपूर अयोध्या को देखने के लिए आकाश को छूनेवाले प्रासाद पर चढ़ गए। वहां से उन्हें देखकर सन्तोष हुआ कि राजमार्ग की दूकानों पर क्रय-विक्रय की धूम है, सरयू यात्रियों और वस्तुओं को उस पार तथा समुद्र तक ले जानेवाली नौकाओं से भरी हुई है। और नगर के उपवनों में विहार करनेवाले नागरिकों की भीड़ है। प्रजा की सुख-समृद्धि से सन्तुष्ट होकर महाराज ने अपने गुप्तदूत से पूछा कि क्या पुरवासियों में मेरे विषय में कोई प्रतिकूल किंवदन्तियाँ भी फैली हुई हैं? पहले तो गुप्तदूत इन्कार करता रहा, परन्तु बहुत आग्रह करने पर उसने उत्तर दिया कि हे देव, केवल इतनी बात को छोड़कर कि आपने राक्षस के घर में रही हुई देवी जानकी को अपने घर में स्थान दे दिया है, अन्य सब बातों में प्रजाजन आपके चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। विशुद्ध चरित्रवाली पत्नी की निन्दा के कारण होने वाली अपनी अपकीर्ति का कठोर समाचार सुनकर महाराज राम का हृदय ऐसे विदीर्ण हो गया जैसे लोहे के घन की चोट खाकर तपा हुआ लोहा विदीर्ण हो जाता है। उनके सामने धर्म-संकट उपस्थित होगया। वह सोचने लगे कि क्या मैं

अपने अपयश की चर्चा की उपेक्षा करदूँ, अथवा अपनी दोष-रहित सती पत्नी का परित्याग कर दूँ ! चिरकाल तक उनका मन सन्देह के झूले में झूलता रहा । अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि अपयश को धोने का अन्य कोई उपाय नहीं है, इस कारण पत्नी का परित्याग करूँगा, यशोधन व्यक्तियों यश इन्द्रियों को सुख-सामग्री से तो क्या, शरीर से भी अधिक मूल्य-वान् है ।

राम ने अपने सब भाइयों को बुलाकर शहर में फैली हुई निन्दा की बात सुनाई तो वे लोग अपने बड़े भाई को चिन्तित देखकर बहुत दुःखी होगये । राम ने उनसे कहा—

तुम लोग देखो कि सूर्य से उत्पन्न हुए इस राजर्षियों के कुल पर सर्वथा सदाचारी होते हुए भी मेरे कारण इस प्रकार कलंक लग रहा है जैसे बरसाती हवा के झोंके से दर्पण पर धब्बा पड़ जाता है, जैसे बाँधने वाला खूंटा गज के लिए असह्य होता है वैसे ही पानी में तेल की भाँति फैलते हुए इस अपयश को मैं नहीं सह सकता । इस अपयश को मिटाने के लिए मैं जानकी का परित्याग करूँगा । मैं जानता हूँ कि वह सन्तानवती होनेवाली है, परन्तु पहले भी पिता की आज्ञा रूपी धर्म का पालन करके मैंने रत्नगर्भा वसुन्धरा का परि-त्याग कर दिया था । मैं जानता हूँ कि वैदेही सर्वथा निष्कलंक है—परन्तु मैं लोकनिन्दा को बहुत बलवान् मानता हूँ । विशुद्ध चन्द्रमा पर पृथ्वी की जो छाया पड़ती है, लोक ने उसे सत्य मानकर चन्द्रमा पर कलंक होने का आरोप लगा दिया है । हो सकता है, तुम लोग सोचो कि फिर रावण के वध में

समाप्त होने वाले मेरे प्रयत्न निष्फल हो जाएँगे। उनका उद्देश्य आततायी को दण्ड देकर अपकार का बदला लेना था, वह पूरा होगया। ठोकर मारनेवाले पाँव को साँप क्या रक्त पीने की इच्छा से डसता है ? यदि तुम चाहते हो कि मैं चिर-काल तक निष्कलंक जीवन व्यतीत करूँ तो करुणा के प्रभाव में आकर मेरे संकल्प का विरोध न करना।

जब जानकी के प्रति रुखाई से भरे ये शब्द भाइयों ने सुने तो उनमें से किसी को न निषेध करने की हिम्मत हुई और न अनुमोदन करने की। तब अलग लेजाकर महाराज ने अपने आज्ञाकारी भाई लक्ष्मण को 'हे सौम्य' इसप्रकार सम्बोधन करके आज्ञा दी कि तुम्हारी भाभी गर्भवती होने के पश्चात् तपोवन जाने की इच्छा प्रगट कर चुकी है, सो इसी निमित्त तुम उसे बाल्मीकि मुनि के आश्रम में ले जाकर छोड़ आओ।

लक्ष्मण ने सुन रखा था कि परशुराम ने पिता की आज्ञा से शत्रु की तरह माता का सिर उतार दिया था। गुरुओं की आज्ञा का पालन करने में आगा-पीछा करना अनुचित है। इस भावना से उसने बड़े भाई के आदेश को स्वीकार कर लिया। लक्ष्मण ने सीता को सूचना दी कि महाराज ने उनकी इच्छा पूर्ति के लिये गंगातीर पर बने हुए आश्रमों पर जाने की आज्ञा दे दी है। इस अनुकूल समाचार से प्रसन्न होकर वह सौमित्र द्वारा लाये हुए, निर्भय और सुसंस्कृत घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर लक्ष्मण के साथ आश्रमों की ओर रवाना होगई। जब रथ उन मनोहर प्रदेशों में से होकर जा रहा था तो जानकी

उसे देखकर मन ही मन सोचती थी कि मेरा पति कितना अच्छा है कि उसने मेरी प्रिय अभिलाषा इतनी शीघ्र पूरी कर दी। उस बेचारी को क्या पता था कि जो दूसरों के लिये कल्पवृक्ष था, वह उस समय उसके लिये तलवार की तरह काटनेवाले पत्तोंवाला असिवृक्ष बना हुआ है। रास्ते में लक्ष्मण ने सीता से सच्ची परन्तु अप्रिय बात नहीं कही, तो भी दाहिनी आँख फड़कने से जानकी ने किसी भावि अनर्थ का अनुमान लगा लिया और मन ही मन में महाराज और उनके छोटे भाइयों के कल्याण की प्रार्थना करने लगी।

रथ गंगा के तटपर पहुँचकर रुक गया। लक्ष्मण ने गंगा की ओर दृष्टि डाली तो उसे प्रतीत हुआ, मानो गगा अपने तरंग रूपी हाथों को उठाकर उसे ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य करने से रोक रही है। सुमंत्र ने रथ से उतरकर घोड़ों को संभाल लिया तो लक्ष्मण ने अपनी भाभी को भी गंगा तट पर उतार लिया और निषाद द्वारा लाई हुए नौका पर बैठकर नदी को ऐसे पार कर लिया जैसे सत्यप्रतिज्ञ व्यक्ति अटूट निश्चय की सहायता से अपनी प्रतिज्ञा के पार लग जाता है।

गंगा के पार पहुँचकर, लक्ष्मण ने बहुत यत्नपूर्वक अपनी लड़खड़ाती वाणी को और उमड़ते हुए आँसुओं को दबाकर महाराज की प्रलयकाल के मेघों से बरसने वाली शिलाओं की वर्षा के सदृश कठोर आज्ञा सीता को सुनाई। उस आज्ञा को सुनकर और पराजय और अपमान की आँधी से चोट खाई हुई लता की तरह आभूषण रूपी पुष्पों को

बिखेरती हुई सीता बेहोश होकर अपनी जननी पृथ्वी की गोद में लेट गई।

'इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुआ, आर्य चरित वाला पति इसे कैसे त्याग सकता है, मानो यह सोचकर पृथ्वी माता ने उस समय जानकी को अपने अन्दर शरण न दी। जब तक सीता चेतनाहीन रही, दुःख की अनुभूति से दूर रही, परन्तु ज्योंही उसे चेतना आई, हृदय में वेदना की आग-सी जल उठी। सुमित्रानन्दन के यत्न से प्राप्त हुई चेतना उसके लिए मोह की अपेक्षा अधिक कष्टदायक सिद्ध हुई। उस अगाध दुःख के समय भी सर्वथा पाप से शून्य सीता ने पति के दोष की बात नहीं कही, वह निरन्तर दुःखी रहने के लिए, खोटे कर्मों को कारण मानकर, अपने-आपको ही कोसने लगी। लक्ष्मण ने भाभी को सान्त्वना देकर बाल्मीकि मुनि के आश्रम का मार्ग बतला दिया और 'हे देवि! मैं बड़े भाई का आज्ञाकारी होने से विवश हूँ, मेरा अपराध क्षमा करना।' कहकर सीता के चरणों में गिर पड़ा। सीता ने उसे उठाकर कहा—

सौम्य, मैं तुझ से प्रसन्न हूँ। तू चिरजीवी हो। जैसे उपेन्द्र विष्णु अपने बड़े भाई इन्द्र की आज्ञा से बंधा हुआ है, वैसे ही तू भी अपने बड़े भाई का पराधीन है। तू घर वापिस जाकर सब माताओं को क्रम से मेरा प्रणाम देना, और मेरी ओर से निवेदन करना कि मेरे शरीर में आपके पुत्र की जो सन्तान गर्भ रूप में विद्यमान है, उसे आशीर्वाद दीजिये और मेरी ओर से उस राजा से कहना कि तुम तो अग्नि परीक्षा

द्वारा मेरे चरित्र की विशुद्धता को जान चुके थे, फिर भी केवल झूठे लोकापवाद को सुनकर तुमने मेरा त्याग कर दिया, क्या यह काम यशस्वी रघुकुल के योग्य हुआ है ? परन्तु तुम बुद्धिमान हो। तुमने मेरे साथ जो कुछ किया उसमें दोष की आशंका क्यों करूँ ? मैं समझती हूँ कि यह असह्य वज्राघात मेरे ही पूर्व जन्मों के पापों का फल है। जब साम्राज्य की लक्ष्मी तुम्हारे चरणों में लोट रही थी, तब उसे छोड़कर तुम मेरे साथ वन को चल दिये थे। उस असहिष्णु लक्ष्मी ने अधिकार पाते ही अपना बदला ले लिया। उसने मुझे तुम्हारे भवन से निकालकर बाहर कर दिया। तुमने मुझे शरणार्थिनी बनाकर दूसरों के साथ भेज दिया है। वनवास के समय राक्षसों के उत्पात से पीड़ा पाये हुए वनवासियों की स्त्रियों को मैं तुम्हारे बल पर शरण दिया करती थी। तुम्हारे ज्वाजल्यमान रहते आज मैं शरणार्थिनी बनकर उन्हीं वनवासियों के पास कैसे जाऊँगी। मैं तो तुम द्वारा परित्यक्त होने पर इस अपमानित जीवन को ही समाप्त कर देती। परन्तु क्या करूँ, मेरे शरीर में तुम्हारा जो तेज गर्भ के रूप में विद्यमान है, वह मुझे आत्मघात से रोकता है। सो मैं सन्तान होने तक सूर्य में ध्यान लगाकर तपस्या करने का यत्न करूँगी। जिससे दूसरे जीवन में भी तुम्हीं मेरे पति बनो, और तब इस जीवन की तरह हमारा वियोग भी न हो। मनु ने आदेश दिया है कि वर्णों और आश्रमों की रक्षा करना राजा का धर्म है। इस कारण यद्यपि तुमने मुझे घर से निकाल दिया है तो भी साधारण तपस्वी समझकर मुझ पर अपनी सुरक्षा का हाथ तो रखना ही।

लक्ष्मण ने सीता देवी का सन्देश सिर झुकाकर सुना और आश्वासन दिया कि वह उसे महाराज तक पहुँचा देगा। तब लक्ष्मण वहां से चला गया। उसके जाने पर सीता फूट-फूट-कर रोने लगी। उसके रोने का शब्द सुनकर मोरों ने नाचना, वृक्षों ने फूलना और हरिणियों ने मुँह का कुशा-ग्रास छोड़ दिया। उस सती के दुःख से दुःखी होकर मानो सारा तपोवन रो उठा।

उसी समय कुशा और ईंधन के संचय के लिये घूमते हुए मुनि बालमीकि, क्रौंचवध से दुःखी हो जिनकी आत्मा से सर्वप्रथम श्लोक प्रकट हुआ था,सीता के रोने का शब्द सुनकर वहाँ आपहुँचे। मुनि को देखकर सीता ने आँखों पर छाये हुए आँसुओं को पोंछ डाला और विलाप छोड़कर चरणों में झुककर प्रणाम किया। मुनि ने उसके चेहरे को देखकर पहचान लिया कि वह दोहद के चिन्हों से युक्त है और सुपुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। फिर कहा---

मैं समाधि द्वारा जान चुका हूँ कि तुझे झूठे अपवाद से घबराकर तेरे पति ने त्याग दिया है। बेटी, इसका दुःख मत करना। तू यहाँ अपने पिता के दूसरे घर में ही आगई है। तीनों लोकों के कष्टदायी काँटे को निकालने वाले, प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाले, और विनय शील राम ने निर्दोष होते हुए भी तेरे साथ दोषी जैसा व्यवहार किया---इस कारण राम से मैं रुष्ट हूँ। तेरा यशस्वी श्वसुर मेरा मित्र है। तेरा पिता विद्वानों को भी मोक्ष-सम्बन्धी उपदेश देने वाला है, तू स्वयं पति को देवता मानने वाली सती स्त्रियों में मूर्धन्य है, ऐसी

कौन-सी चीज़ है, जो तुझे मेरी सहानुभूति का पात्र नहीं बनाती ? सो पुत्रि, इस तपोवन में, जहाँ तपस्वियों के साथ रहने के कारण हिंसक जन्तु भी अहिंसक बन जाते हैं, तू निर्भय होकर निवास कर। सन्तान होने पर उनके जात-कर्मादि संस्कार यहीं पर हो जायेंगे। मुनियों के तटवर्ती आश्रमों से सुशोभित, पापों का हरण करने वाली सरयू में स्नान और उसकी रेती में इष्ट देवताओं का पूजन करने से तेरे मन की उदासी जाती रहेगी। मुनियों की वाक्पटु कथायें, ऋतु के पुष्प, फलों और स्वयं ही उत्पन्न होनेवाले बलि के योग्य चीज़ों को जंगलों से ला-लाकर वनदेवियाँ तेरे नवीन दुःख से घायल मन को बहलाया करेंगी। आश्रम के नन्हे-नन्हे पौधों को शक्ति अनुसार घड़ों के जल से सींचकर, सन्तान उत्पत्ति से पहले ही तू बच्चों को दूध पिलाने का सुख प्राप्त कर सकेगी।

इस प्रकार आश्वासन देकर, ऋषि बाल्मीकि, जनकनन्दिनी को अपने आश्रम में ले गये, और उसके दुःख से दुःखी सहृदय तपस्वियों के हाथ में सौंप दिया। तपस्वियों ने रात्रि के समय सीता के निवास के लिय जो कुटीर सन्नद्ध किया, उसमें इंगुदी के तेल से दीपक जलाने की व्यवस्था थी, और शुद्ध मृग-चर्म का बिस्तर बिछा हुआ था। वहाँ वल्कलधारिणी सीता, प्रति-दिन स्नान से विशुद्ध होती और अतिथियों की सेवा का पुण्य-लाभ करती हुई, पति की सन्तान के निमित्त जीवन यात्रा तय करने लगी।

सम्भव है अब महाराज के मन में दया का भाव उत्पन्न

हो जाय, ऐसा सोचकर लक्ष्मण ने सीता का दिया हुआ करुणा-जनक सन्देश अपने बड़े भाई को सुना दिया। उसे सुनकर राम की आँखों में सहसा आँसू आगये, जैसे पौषमास का चन्द्रमा ओस से धुँधला हो जाता है। कारण यह है कि राम ने सीता को बदनामी के डर से घर से पृथक् किया था, मन से पृथक् नहीं किया था। शीघ्र ही राम ने शोक के आवेश को धैर्य से दबा लिया, और सब भाइयों के साथ मिल-कर आसक्ति से शून्य होकर शासन के कार्य में लग गया। राज्यलक्ष्मी मानो सौत के हट जाने से निश्चिन्त होकर, राम की बगल में सुख से विश्राम करने लगी। जब सीता को यह समाचार मिला कि उसका परित्याग करके भी राम ने दूसरा विवाह नहीं किया, और यह भी सुना कि अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मिणी के स्थान पर उसकी स्वर्णमयी मूर्ति को स्थापित किया, तब पति-वियोग का बहुत भारी दुःख भी उसे कुछ सह्य प्रतीत होने लगा।

१५.

राम का शरीर-त्याग

सीता का परित्याग करने पर राम एकचित्त होकर रत्नाकर मेखला पृथ्वी का शासन करने में लग गये। यमुना तट पर तपस्या करने वाले मुनि लोगों को लवण नाम का राक्षस दुःखी करता था। वे लोग रक्षा की प्रार्थना लेकर महाराज के पास आये। राम पर भरोसा करके उन्होंने राक्षस पर अपने तपोबल से प्रहार नहीं किया। तपस्वी लोग अन्य कोई उपाय न होने पर ही शाप देने में अपने तप का व्यय करते हैं। राम ने उन्हें रक्षा का आश्वासन दे दिया। भगवान् पृथ्वी पर धर्म की रक्षा के लिये शरीर धारण करते हैं। मुनियों ने राम को लवण के मारने का उपाय बतलाते हुए कहा कि शूलधारी लवण को जीतना कठिन है, ऐसे समय उस पर आक्रमण करना चाहिये—जब उसके पास शूल न हो। महाराज ने मानो, नाम सार्थक करने के लिये शत्रुघ्न को शत्रु का नाश करने की आज्ञा दी। बड़े भाई से आशीर्वाद प्राप्त करके शत्रुघ्न मार्ग के रमणीय वन-स्थलों को देखता हुआ लवण पर विजय के लिये चला। राम ने पीछे से सहायता के लिये जो सेना भेजी वह ऐसे हुई जैसे सार्थक धातु के साथ

लगा हुआ सहायक उपसर्ग। शत्रु का नाश करने के लिये जाते हुए उसे ऋषि लोग मार्ग-दर्शन कर सहायता देते थे। रास्ते में ऋषि बाल्मीकि का आश्रम पड़ा। शत्रुघ्न ने एक रात वहां निवास किया। तप के प्रभाव से जुटाई हुई अनेक प्रकार की रुचिकर वस्तुओं से ऋषि ने उसका स्वागत किया। जिस रात शत्रुघ्न ने ऋषि के आश्रम में विश्राम किया, उसी रात सीता ने दो राजकुमारों को जन्म दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजकुमारों के जन्म से प्रसन्नमन होकर शत्रुघ्न ने विजय-यात्रा के लिये प्रयाण किया। अन्त में वह रावण की बहिन कुम्भीनसी के पुत्र लवण की मधूपघ्न नाम की नगरी के समीप जा पहुँचा, जहाँ लवण ने कर की भाँति भोजन के लिये वन से लाकर तरह-तरह के प्राणियों को इकट्ठा कर रखा था। लवण का धुंए जैसा कालिमा मिला हुआ लाल रंग था, उसके शरीर से चर्बी की गन्ध आ रही थी, उसके आग की तरह लाल-लाल बाल थे, और वह मास खाने वाले राक्षसों से घिरा हुआ था—मानो चलती-फिरती चिता की आग हो। शत्रुघ्न ने जब उसे शूल रहित पाया, तभी उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में उन्हीं को जय प्राप्त होती है, जो शत्रु की निर्बलता के समय उस पर प्रहार करते हैं। 'आज मुझे भर पेट भोजन नहीं मिला था, इससे डर कर मानो विधाता ने तुझे मेरे पास भेजा है'—इस प्रकार ललकार कर राक्षस ने उस पर फेंकने के लिये एक बड़े पेड़ को ऐसी सुगमता से उखाड़ लिया जैसे घास को उखाड़ लेते हैं। शत्रुघ्न के वाणों ने रास्ते में ही वृक्ष को काट दिया—फलतः वृक्ष तो

उस तक न पहुँचा, केवल उसके फूलों का रज उड़कर उसके अंगों को सुशोभित करने लगा। वृक्ष के निष्फल होने पर लवण ने यमराज की मुष्टि के समान एक बड़ी शिला उठाकर राजपुत्र पर फेंकी। शत्रुघ्न ने उस पर इन्द्रास्त्र का प्रहार किया, जिससे वह शिला बालू से भी अधिक सूक्ष्म परमाणुओं में बँट गई। तब राक्षस अपनी दाहिनी भुजा को उठाकर राजपुत्र की ओर लपका—उस समय राक्षस आँधी से प्रेरित किये हुए ऐसे पर्वत की भाँति प्रतीत हो रहा था जिस पर ताल का एक ही पेड़ लगा हुआ हो। शत्रुघ्न ने राक्षस के हृदय पर वैष्णवास्त्र का प्रहार किया, जिससे निष्प्राण होकर पृथ्वी को कँपाता और तपस्वियों के हृदयकम्पन को मिटाता हुआ लवण नीचे गिर गया। उस समय राक्षस के शरीर पर कौए मँडराने लगे, और शत्रुघ्न के सिर पर आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। लवण का नाश करके शत्रुघ्न ने ऐसा अनुभव किं मानो अब उसने इन्द्रजित को मारने वाले लक्ष्मण भैय्या के भाई बनने की योग्यता प्राप्त कर ली थी।

तपस्या में विघ्न उत्पन्न करनेवाले राक्षस के नाश से संतुष्ट होकर ऋषि लोग शत्रुघ्न की प्रशंसा करने लगे तो विजयी क्षत्रिय का सिर लज्जा से नीचे झुककर अधिक शोभायमान होने लगा। विजय के उपलक्ष्य में शत्रुघ्न ने कालिन्दी के तट पर मधुरा नाम के नगर की स्थापना की। सुखकारी राज्य के आकर्षण से खिंचे हुए पौरजनों के ऐश्वर्य के कारण वह नगरी ऐसी प्रतीत होने लगी मानो स्वर्ग से छलक कर गिरी हुई विभूति से सजाई गई हो। नये राज-महल की ऊँची अट्टा-

लिका में बैठकर जब शत्रुघ्न चक्रवाकों वाली यमुना की धारा को देखता था, तो वह भूमि का सोने के शृंगार युक्त वेणी-सी दिखाई देती थी।

उधर बाल्मीकि मुनि ने दशरथ और जनक दोनों की मित्रता को निभाते हुए राम के पुत्रों के विधिवत् संस्कार किये। उनकी उत्पत्ति के समय, गर्भ के क्लेश को दूर करने के लिये कुशा और लव (गौ की पूँछ के बाल) से सहायता ली गई थी, इस कारण शिशुओं के नाम कुश और लव रखे गये। ऋषि ने उन्हें वेदवेदांग की शिक्षा से परिष्कृत और शस्त्र विद्या से शक्तिसम्पन्न बनाकर, पिता तुल्य राजकुमार बना दिया।

उन्हीं दिनों ऋषि ने रामायण की रचना की, और वह कुश और लव को याद करा दी। स्वर सहित गाये हुए रामायण के श्लोकों में अपने पति का मधुर वृत्तान्त सुनकर सीता अपने वियोग दुःख को भूल जाती थी।

राम के अन्य तीनों भाइयों के भी दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए। शत्रुघ्न ने अपने सुबाहु और बहुश्रुत नाम के पुत्रों को मथुरा में प्रतिष्ठापित कर दिया, और स्वयं अयोध्या को लौट गया। उसने लौटते हुए इस भय से कि बाल्मीकि के तप में विघ्न न हो—उनके आश्रम में डेरा न डाला, और इस कारण कुश और लव के गाये हुए श्लोकों को शान्तभाव से सुनते हुए मृगों वाले आश्रम का आनन्द न ले सका।

अयोध्या में पहुँचकर शत्रुघ्न ने सभासदों से घिरे हुए श्रीराम को सादर प्रणाम किया। राम ने भी उसकी पीठ पर

हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। शत्रुघ्न ने राम को विजय यात्रा के और तो सब समाचार सुना दिये, केवल सन्तानोत्पत्ति का वृत्तान्त न सुनाया, क्योंकि बाल्मीकि मुनि ने आदेश दे दिया था कि उन्हें मैं यथासमय राम के अर्पण करूँगा, तुम उनके विषय में कुछ न कहना।

एक दिन नगर निवासी एक ब्राह्मण बाल्यावस्था में ही मरे हुए अपने पुत्र की लाश को गोद में लेकर राम के द्वार पर इस प्रकार क्रन्दन करने लगा कि हे धर्ती माता, तेरी शोचनीय दशा है। तू जब से दशरथ से छूटकर राम के हाथों में आई है, निरन्तर दीन से दीन दशा को प्राप्त होती जा रही है। इससे पहले इक्ष्वाकुवंशजों के राज्य में कभी अकाल मृत्यु तो नहीं होती थी। इस प्रकार ब्राह्मण के कष्ट का कारण सुनकर प्रजापालक राम को बहुत लज्जा आई, और ब्राह्मण से थोड़ी प्रतीक्षा के लिये क्षमा मांगकर उसने पुष्पक विमान का स्मरण किया। तत्काल विमान सेवा में उपस्थित होगया। महाराज सशस्त्र हो उसमें बैठकर यह देखने के लिये चले कि इस अकाल मृत्यु का कारण क्या है! उस समय उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी 'हे राजन्, तुम्हारे राज्य में कोई मर्यादा विरोधी कार्य हो रहा है, उसे ढूंढकर शान्त करो। तभी तुम कृतकृत्य हो सकोगे।' आकाशवाणी से प्रेरित होकर राम ने विमान द्वारा चारों ओर दौरा लगाया। उसने देखा कि एक वृक्ष की शाखा से उलटा लटका हुआ धुंए की भाँति धुंधली लाल आँखों वाला कोई पुरुष तपस्या कर रहा है। पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि वह शम्बूक नाम का शूद्र

है और देवपद की प्राप्ति के लिये तप कर रहा है। जो विद्याध्ययनादि द्वारा द्विज पद का अधिकारी नहीं हुआ, उसे तपस्या का अनधिकारी मानकर राम ने दण्ड देने के लिये शस्त्र हाथ में लिया और उसके हिम से कुम्हलाये हुए कमल जैसे सिर को गर्दनरूपी नाल से काटकर अलग कर दिया। कठोर तप से भी शम्बूक को जो पुण्य प्राप्त न होता, वह महाराज के हाथ से मारे जाने पर प्राप्त हो गया।

समयान्तर में अगत्स्य मुनि ने प्रकट होकर समुद्र से प्राप्त किया हुआ दिव्य अलंकार राम को भेंट किया, जिसे सीता की अनुपस्थिति में राम उदासमन से ग्रहण करके राजधानी में लौटा, तो उससे पहले ब्राह्मण का वह शिशु, जिसे वह मृत समझे हुए था, सचेत हो चुका था। जो ब्राह्मण राम की निन्दा करता हुआ अयोध्या आया था, वह यमराज से भी रक्षा करने वाले दिव्य पुरुष की स्तुति गाता हुआ घर को लौटा।

अनन्तर राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। जब उसने यज्ञ के अश्व को देश-देशान्तर में विचरण के लिये छोड़ दिया, तब विभीषण सुग्रीव तथा अन्य भूपतियों की ओर से बहुमूल्य भेंटों की वर्षा होने लगी। निमन्त्रित ऋषि लोग अपने तपोवनों और दिव्य स्थानों को छोड़कर अयोध्या में एकत्र होने लगे। अभ्यागतों के ठहरने की व्यवस्था राजधानी के भीतर और उसके चारों मुख्य द्वारों के बाहर भी की गई। उस समय अयोध्या ऐसे प्रतीत होती थी, मानो अपनी बनाई सृष्टि से घिरी हुई चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति हो। एक पत्नी-व्रती राम ने यज्ञमण्डप में यजमान पत्नी के स्थान पर सीता

की स्वर्णमयी प्रतिमा की स्थापना की थी—यह भी इक्ष्वाकु-वंश के यश के योग्य ही प्रशंसनीय कार्य था। राम के यज्ञ की यह विशेषता थी की राक्षस लोग भी उसके रक्षक बन गये थे।

उसी अवसर पर प्राचेतस मुनि बालमीकि की रचना रामायण को श्लोकों में गाते हुए कुश और लव अयोध्या में घूम रहे थे। राम का पावन चरित—बालमीकि जैसा कवि—और किन्नर के समान मधुर स्वर वाले गायक—सुनने वालों को मुग्ध करने के लिये और कौन-सी वस्तु शेष थी। राम को जब समाचार मिला तो उत्सुक होकर भाइयों के साथ उसने उन्हें सभा में बुलाया, और रामायण सुनी। जैसे शीत ऋतु के प्रभात में वन-वृक्षों के पत्तों से ओस की बूंदें झरने लगती हैं, कुश और लव के करुणा भरे संगीत को सुनकर सभासदों के नेत्रों की वही दशा होगई। कोई आँख नहीं थी, जिसमें पानी न हो। आँसू और वेष भिन्न थे, परन्तु मुखमुद्रा वही थी, जो राम की! यह देखकर जनता की आँखों की टकटकी नहीं टूटती थी। लोगों को उतना आश्चर्य कुमारों की संगीत में प्रवीणता से नहीं हुआ था, जितना उनके प्रति राम की उपेक्षा से हुआ। जब राम ने उनसे स्वयं पूछा कि यह किस कवि की कृति है, और तुम्हें संगीत की शिक्षा किसने दी है, तो उन्होंने बालमीकि मुनि का नाम लिया। तब राम अपने भाइयों को साथ लेकर मुनि के पास गये, और सारा राज्य उनकी सेवा में भेंट कर दिया। बालमीकि मुनि ने राम को कुश और लव के सम्बन्ध में सब कुछ बताकर राज्य के बदले

में राम द्वारा सीता के ग्रहण की माँग पेश की। राम ने उत्तर दिया—

भगवन्, आपकी बेटी तो हम सब के सामने अग्नि परीक्षा द्वारा शुद्ध सिद्ध हो चुकी है। परन्तु क्या किया जाय। यहाँ की प्रजा उस पर विश्वास नहीं करती। अतः जानकी इन सब के सामने अपने-आपको पवित्र सिद्ध करे। तब मैं आपकी आज्ञा से उसे और प्रजा को अंगीकार कर लूँगा।

राम के ऐसा आश्वासन देने पर बाल्मीकि ने अपने शिष्यों द्वारा सीता को अयोध्या में बुला लिया।

एक दिन राम ने राजधानी के नागरिकों को एकत्र करके आदि कवि को सन्देश भेज दिया। ऋषि सीता और बालकों के साथ वहाँ उपस्थित हो गये। सीता ने केसुआ रंग के कपड़े पहिने हुए थे, उसकी आँखें अपने चरणों की ओर झुकी हुई थीं, और मूर्ति शान्त थी। यह सब कुछ देखकर अनायास ही यह अनुमान होता था कि वह देवी सर्वथा निर्दोष है। जब सीता जी सामने आईं तब लोग फलों के बोझ से लदे हुए धान के पौधों की तरह, दूसरी दिशा को मुँह करके, नीचे की ओर देखने लगे। योगासन में बैठे हुए बाल्मीकि मुनि ने राम के सामने आदेश दिया कि 'बेटी, प्रजा के संशय को दूर करो।' मुनि के शिष्य द्वारा दिये हुए जल से आचमन करके सती सीता ने सच्चे दिल से इस प्रकार प्रार्थना की—

हे माता वसुन्धरे, यदि मैंने कभी मन, वाणी या कर्म से अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी से सम्पर्क नहीं किया तो मुझे अपनी गोद में छिपाले।

सती का वचन पूरा होते ही पृथ्वी फट गई, और उसमें से बिजली की तरह चमकती हुई ज्योति का एक पिण्ड प्रकट हो गया। लोगों ने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखा कि ज्योति के उस मण्डल में नाग फणों द्वारा उठाये हुए सिंहासन पर समुद्र-मेखला पृथ्वी स्वयं विराजमान है। उसने आकर सीता को अपनी गोद में ले लिया, सीता भाव भरे नेत्रों से अपने पति की ओर देख रही थी, और राम—ठहरो, ठहरो—चिल्ला रहे थे कि पृथ्वी माता सीता को गोद में लेकर विलीन हो गईं। उस समय राम को पृथ्वी पर बहुत क्रोध आया और उसने अपने धनुष की ओर हाथ बढ़ाया। ऋषि ने उसे यह समझाकर शान्त कर दिया कि दैव की यही इच्छा थी और दैव की इच्छा टल नहीं सकती। अतः क्रोध करना व्यर्थ है।

यज्ञ की समाप्ति पर राम ने ऋषियों और राजाओं को आदर सहित विदा कर दिया, और उसके हृदय में सीता के प्रति जो प्रेम था, सीता के पुत्रों में उसे केन्द्रित कर दिया। भरत के मामा युधाजित् के आदेश से राम ने सिन्धु देश भरत को सौंप दिया, जहाँ पहुँचकर भरत ने वहाँ के गन्धर्वों को जीत लिया और उनके हाथों में हथियारों के स्थान पर वीणा पकड़ा दी। भरत अपने तक्ष और पुष्कल नाम के पुत्रों को उनके नाम से बनाई हुई 'तक्ष' और 'पुष्कल' नाम की राजधानियों में अभिषिक्त करके स्वयं अपने बड़े भाई के पास लौट आया। महाराज की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपने अंगद और चन्द्रकेतु नाम के पुत्रों को कारापथ का राज्य सौंप दिया। इसी मध्य राम की माताओं का स्वर्गवास हो गया।

सब ने उनका यथायोग्य तर्पण किया।

एक समय शरीरधारी मृत्यु ने राम से एकान्त में बात-चीत करने की इच्छा प्रकट करते हुए यह शर्त लगाई कि जो कोई हमको एकान्त में बात करते देखेगा, तुम्हें उसका परित्याग कर देना होगा। राम के स्वीकार कर लेने पर काल ने एकान्त में अपना असली रूप प्रदर्शित करके ब्रह्मा का यह सन्देश सुनाया कि आप स्वर्ग में विराजमान हों। उसीसमय क्रोधी मुनि दुर्वासा ने द्वार पर आकर रामचन्द्र से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। इसे काल की गति ही समझना चाहिये कि सब कुछ जानते हुए भी द्वार की रक्षा के लिये नियुक्त लक्ष्मण ने स्वयं ही दुर्वासा के क्रोध से डरकर नियम को भंग कर दिया। वह महाराज से आज्ञा लेने अन्दर चला गया। फल यह हुआ कि लक्ष्मण को दण्ड देना राम के लिये आवश्यक हो गया। बड़े भाई को भावनाओं के संकट से बचाने के लिये लक्ष्मण ने सरयूतट पर योग समाधि द्वारा अपने शरीर का त्याग कर दिया। राम ने भी विधाता के आदेश को सिर नवाकर स्वीकार कर लिया, और कुशावती में कुश, और शरावती में लव को स्थापित करके भाइयों के साथ यज्ञाग्नि के पीछे-पीछे, उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हो गया। अपने स्वामी के प्रेम से खिंचे हुए पुरवासी भी घरों को छोड़कर साथ हो लिये। जब वानरों और राक्षसों को मालूम हुआ कि महाराज राज्य को त्यागकर वन की ओर जा रहे हैं तो वह भी कदम्ब की कली जैसे बड़े-बड़े आँसुओं को बहाते हुए उसी मार्ग पर चल पड़े। इतने में राम को लेने के लिये पुष्पक-

विमान आगया। पुरवासियों ने सरयू में स्नान करके पुण्य लाभ किया। उस समय स्नान करने वालों की भीड़ के कारण नदी का जल ऐसा प्रतीत होता था, मानो गौओं के झुण्ड उसमें तैर रहे हों। तभी से वह तीर्थ गोप्रतर नाम से पुकारा जाने लगा।

राम ने आततायी रावण का वध, और तपस्वियों की रक्षा का कार्य पूरा करके शान्ति रक्षा के लिये उत्तर में हनुमान और दक्षिण में विभीषण को अपने दो कीर्तिस्तम्भों के समान स्थापित कर दिया, और स्वयं स्वर्ग सिधार गये। उनकी भक्ति में जिन वानर, राक्षस तथा पौरजनों ने शरीर त्याग किया, उनके लिये भगवान् ने एक नये स्वर्ग की रचना करदी।

१६.

उत्तराधिकारी कुश

महाराज रामचन्द्र के परलोक गमन के पश्चात् अन्य लव आदि सातों रघुवंशी राजकुमार अग्रज होने और गुणवान् होने के कारण कुश को अपना बड़ा मानने और उत्कृष्ट वस्तुओं से उसका अभिनन्दन करने लगे। इस विषय में उन्होंने अपनी कुल प्रथा का ही अनुकरण किया। वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में दुर्ग तथा सेतु बनाने, कृषि गोरक्ष्यादि की उन्नत्ति करने और गज आदि वन्य पशुओं के बाँधने और अन्य आन्तरिक प्रबन्ध में सशस्त्र रहते थे, जैसे समुद्र की लहरें सीमा का उल्लंघन नहीं करती, वे भी अधिकार-क्षेत्र की सीमा का उल्लंघन नहीं करते थे।

आधीरात का समय था। दीपक बुझे हुए थे। शयनागार में सोये हुए कुश की नींद टूटी तो उसने क्या देखा कि एक ऐसी स्त्री सामने खड़ी है, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था, और जिसकी वेष-भूषा वियोगिनी जैसी थी। सज्जन शासकों को प्राप्त होने वाली स्वाभाविक समृद्धि से युक्त, इन्द्र के समान तेजस्वी, विजेता राजा कुश के प्रति जय का आशीर्वाद देकर वह महिला हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। भवन की

कुण्डियाँ बन्द हैं, फिर भी जैसे दर्पण में छाया अनायास ही प्रविष्ठ हो जाती है, यह शयनागार में कैसे आगई? इसपर आश्चर्यान्वित होते हुए कुश ने बिस्तर पर बैठे-ही-बैठे पूछा—

तू बन्द द्वारों वाले घर में पहुँच गई, परन्तु देखने से योगिनी प्रतीत नहीं होती। साथ ही तूने वेष ऐसा बनाया हुआ है, मानो पाले से मुरझाई हुई कमिलिनी हो। बता, तू कौन है? किस की पत्नी है? यहाँ किस उद्देश्य से आई है? इन प्रश्नों का उत्तर साफ़-साफ़ दे। तू समझ ले कि रघुवंशियों का मन कभी पर-स्त्री की ओर नहीं झुकता।

उस स्त्री ने उत्तर दिया—

"स्वर्गलोक को प्रयाण करने की इच्छा से जब तुम्हारे पिता ने निर्दोष राजधानी को छोड़ा था, तब नगरवासी उनके पीछे-पीछे चले गये, और नगरी को खाली कर गये थे। हे राजन्, तुम मुझे उस अनाथ अयोध्यापुरी की अधिदेवता जानो। रघुकुल राज्य की राजधानी होने के कारण जो एक दिन इन्द्रपुरी को मात दे रही थी, वह मैं तुझ जैसे सर्व-शक्ति सम्पन्न सूर्यवंशी शासक के विद्यमान रहते अत्यन्त दय-नीय दशा को प्राप्त हो गई हूँ। मेरे विशाल शयनागार, और आकाश को छूनेवाली तथा अटारियों ने खंडहरों का रूप धारण कर लिया है तथा संगीत शालाएँ टूट-फूट गई हैं। मेरा ऐसा रूप हो गया है जैसे उस सन्ध्या काल का होता है, जिसमें सूर्य अस्त हो गया हो, और प्रचण्ड वायु ने बादलों को छिन्न-भिन्न कर दिया हो। जिस राजमार्ग पर किसी दिन अभिसारिकाओं के चमकदार पायजेबों की मधुर

ध्वनि सुनाई दिया करती थी, वहाँ आज चीखते हुए गीदड़ मुँह में मांस के टुकड़े लिए फिरते हैं। जिन बावड़ियों में पौर-स्त्रियों के घड़ों में पानी भरने के समय मृदंग जैसी मनोहर ध्वनि सुनाई दिया करती थी, जंगली भैंसों के सींगों से चोट खाया हुआ उनका जल आज मानो चीतकार कर रहा है। वे क्रीड़ा मयूर, जिनके नृत्य से मेरे उपवन शोभायमान होते थे, आज वृक्षों पर सोते हैं, क्योंकि उनके लिए बनाये हुए छड़ियों के घर नष्ट हो गये हैं, मृदंग का शब्द लुप्त हो जाने से उनका नृत्य बन्द है, जंगल की आग ने उनकी कलगियों को जला दिया है, और वे बिल्कुल जंगली मोर बन गये हैं। जिन सोपान मार्गों को सुन्दर स्त्रियों के लाक्षा के रंग से रंगे हुए चरण अलंकृत करते थे, उन पर, अब हरिणों को मारकर रक्त से सने हुए पैरों वाले व्याघ्र घूमा करते हैं। पद्मवनों में पौरजनों के स्थान पर सिंहों के नखांकुरों से घायल हाथी विचरण करते हैं, और उद्यानों में लगे हुए पुष्पों को नारियों के कोमल हाथों की जगह बन्दर नोंच-नोंच कर फेंकते हैं। भवनों की सफेदी काली पड़ गई है, इस कारण चाँद की मोतियों के समान सफेद चांदनी भी घरों पर प्रतिक्षिप्त नहीं होती। जिन गवाक्षों में सुन्दर रमणियों की आँखें चमका करती थीं, उनमें रात के समय दीपक के अभाव से, और दिन में कीड़ों के बनाये हुये जालों के कारण अन्धकार रहता है। जब मैं सरयू की रेती को बलिक्रिया से, और स्नान के समय काम आने वाले चूर्णआदि सुगन्धित पदार्थों से शून्य और बानीर आदि वनस्पतियों से भरा हुआ देखती हूँ, तो मेरा हृदय जलने

लगता है। हे राजन्, मैं यह कहने आई हूँ कि जैसे तुम्हारे पूज्य पिता ने मानव शरीर को इच्छापूर्वक त्यागकर दिव्य शरीर में प्रवेश कर लिया था, वैसे ही तुम भी इस कुशावती को छोड़कर अपने कुल की राजधानी में आजाओ।

रघुवंश के अग्रणी कुश ने प्रसन्न मन से अयोध्या की अधिदेवता की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। अधिदेवता भी मुख से प्रसन्नता प्रकट करती हुई अन्तर्हित होगई। प्रातःकाल राज सभा में राजा ने रात का सब वृत्तान्त सुनाया। मान्य सभासदों ने यह कहकर उसका अभिनन्दन किया कि राजधानी ने स्वयं आपको अपना स्वामी वर लिया है! कुश ने कुशावती वेद का अध्ययन करने वाले श्रोत्रियों को सौंप दी और स्वयं अनुकूल दिन देखकर परिवार सहित अयोध्या की ओर प्रयाण किया।

जैसे बरसाती वायु के पीछे बादल चलते हैं, वैसे ही उसके पीछे-पीछे सेनाओं ने भी प्रस्थान किया। रास्ते में सेना की छावनी ही कुश की राजधानी बन जाती थी। ध्वाजाओं की पंक्तियाँ उपवनों के समान शोभायमान होती थीं। विशाल हाथी क्रीड़ा फूलों के समान दिखाई देते थे, और रथ भवनों के स्थानापन्न थे। आगे-आगे नरेश की महती श्वेत ध्वजा, और पीछे-पीछे कोलाहल करती हुई सेनायें—ऐसा प्रतीत होता था, मानो पूर्ण चन्द्रमा के प्रभाव से उमड़ता हुआ समुद्र उसका अनुगमन कर रहा हो। सेनाओं के रथ, हाथी, घोड़े और पदातियों के उठाये हुए रज को आकाश में उठते हुए देखकर भान होता था, मानो सेनाओं के बोझ को सहन करने में अशक्त होकर, वसुन्धरा

विष्णुलोक में अपनी शिकायत लेकर जा रही है। यात्रा की तैयारी में, यात्रा के समय आगे और पीछे, और उपनिवेश में, जहां भी देखो वहाँ सेना भरपूर दिखाई देती थी। मार्ग में जो धूलि थी, वह हाथियों के मद-वारि से पंक के रूप में और जो पंक था, वह घोड़ों के खुरों से उठाये हुए रज के कारण धूलि के रूप में परिणित हो गया। विन्ध्य पर्वत की घाटियों में अनेक भागों में बँटकर मार्ग ढूंढ़ती हुई और कोलाहल करती हुई वह सेना रेवा नदी के समान प्रतीत होती थी, जिसके कलकल की ध्वनि गुफाओं से प्रतिध्वनित हो रही थी। यात्रा के समय रंगदार पत्थरों के संघर्ष से कुश के रथ के पहिये रंगीन हो जाते थे। प्रयाण के शब्द में राजकीय वाद्य के मिश्रित हो जाने से तुमुल और मधुर ध्वनि आकाश में फैल जाती थी, और स्थान स्थान पर वनवासी किरात विविध उपहार लेकर उपस्थित होते थे, जिन्हें कुश आदरपूर्वक ग्रहण कर लेता था। मार्ग में त्रिवेणीतीर्थ पर पड़ाव करके लम्बी यात्रा के पश्चात् कुश जब सरयू के तट पर पहुँचा, तब उसे रघुवंशी राजाओं के महान् यज्ञों के चिह्न स्वरूप सैंकड़ों स्तूप दिखाई दिये। राजधानी में पहुँचने पर फूलों वाले वृक्षों के स्पर्श से सुगन्धित, और सरयू की तरंगों से शीतल वायु राजा और उसकी थकी हुई सेनाओं पर मानो पंखा झलने लगा। नगरी के भिन्न-भिन्न भागों में सैनिकों के ठहरने की व्यवस्था कर दी गई। जैसे गर्मी से तपी हुई भूमि को जल से सींचकर मेघ नया कर देते हैं, वैसे ही स्वामी द्वारा नियुक्त कारीगरों के संघ ने थोड़े समय में सारी नगरी को नई नगरी का रूप दे दिया।

कुश ने नगरी में प्रवेश करने से पूर्व देवालयों में देवताओं की विधिपूर्वक अर्चना कराई। स्वयं मुख्य राजभवनों से प्रेमिका के हृदय में प्रेमी की भाँति प्रवेश करके, अन्य अमात्यों तथा अनुजीवियों के लिये भी निवास स्थानों की व्यवस्था कर दी। घुड़सालाओं में घोड़े हिन-हिनाने लगे, हस्तिगृहों में खम्बे से बँधे हुए हाथी झूमने लगे और दूकानों में बिक्री की बहुमूल्य सामग्री भर गई। उस समय वह पुरी ऐसे शोभायमान हो गई, जैसे विविधि आभूषणों से सुशोभित सुन्दरी नारी। रघु-वंश की पुरानी शोभा से युक्त उस राजधानी में निवास करते हुए राजा कुश को न स्वर्ग के स्थायी इन्द्र से स्पर्धा रही, और न अलकापुरी के शासक कुबेर से। उसके अयोध्या में सुख पूर्वक शासन करते हुए ग्रीष्मऋतु का आगमन हुआ। ऐसी ग्रीष्मऋतु जो पतियों की प्यारी स्त्रियों को रत्नों से जड़े हुए उत्तरीय, अत्यन्त श्वेत छातियों पर हार और सांस से उड़जाने वाले दुपट्टे पहनना सिखा देती है। सूर्य ने दक्षिण दिशा का परित्याग करके उत्तर दिशा की ओर प्रयाण किया, मानो इस से प्रसन्न होकर उत्तर दिशा पर्वतों की पिघलती हुई बर्फ द्वारा हर्ष के आँसू बहाने लगी। बावड़ियों का पानी शैवालवाली सीढ़ियों को छोड़कर प्रतिदिन नीचे जाने लगा, जिससे उसकी ऊँचाई स्नान करनेवाली रमणियों की कमर तक ही रह गई। धनी लोग जलधाराओं द्वारा शीतल घरों में चन्दन के जल से धुले हुए मणिमय आसनों पर सोकर धूप के समय को काटने लगे। ऐसे तीव्र निदाघ के आने पर कुश की इच्छा हुई कि लहरों की श्रेणियों में मस्त होकर घूमते हुए राजहँसों वाली

लताओं से बने हुए पुष्पगृहों द्वारा सुशोभित और गर्मी के दुःख को हरने वाली सरयू के जलों में परिवार सहित विहार करें। सरयू के तट पर स्नान और विश्राम के उपयुक्त स्थान तैयार किये गये और जाल डालने वाले तैराकों द्वारा सब नक्रों को निकालकर जल को सुरक्षित बना दिया गया। तब उसमें राजा और रानियों ने चिरकाल तक नौकाओं द्वारा नदी का आनन्द लेने के लिए सैर की। जल के आवगाहन के पश्चात् गले में धारण किये हुए बहुमूल्य हार से शोभायमान कुश, नौका से उतरकर रानियों के साथ विहार के लिए जल में प्रविष्ट हुआ। उस समय वह ऐसे सज रहा था मानो उखाड़ी हुई कमिलिनी को कन्धे पर लटकाये हुए गजराज हथिनियों सहित नदी में प्रविष्ट हुआ हो।

राम को अगस्त्य मुनि ने प्रसन्न होकर एक मांगलिक कण्ठहार दिया था। राम ने उसे राज्य के साथ ही कुश के अर्पण कर दिया था। स्नान करते हुए अनजाने से वह हार पानी में डूब गया। जब स्नान से निवृत्त होकर राजा कपड़े पहिनने लगा तो उसे विदित हुआ कि गला हार से शून्य है। निर्लोभ होने के कारण किसी आभरण विशेष में कुश की ममता नहीं थी, तो भी वह हार विजय का प्रतीक था, और पिता द्वारा धारण किया जा चुका था, इस कारण उसके नाश को राजा न सह सका। नदी के जानने वाले सब तैराकों को बुलाकर आज्ञा दी गई कि वे जल में घुसकर हार को तलाश करे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। तब उन्होंने कुश से विश्वास पूर्वक कहा—

हे देव, हमने पूरा प्रयत्न किया, परन्तु उसमें आपका बहुमूल्य आभूषण नहीं मिला। हम समझते हैं कि जल में रहने वाले किसी नाग ने उसे जीव समझकर खा लिया।

यह सुनकर क्रोध से कुश की आँखें लाल हो गईं, और उसने नागों के नाश के लिए गरुडास्त्र को हाथ में लिया। गरुड़ास्त्र के दर्शनमात्र से भयभीत नागराज तुरन्त ही अपनी कन्या को साथ लेकर जल से निकल आया, और राजा के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसके निकलने के समय वह जलाशय मन्थन के समय समुद्र की भाँति खौल रहा था, उसमें रहने वाले नक्र आदि संत्रस्त होगए थे, और घोर कोलाहल हो रहा था। सर्पराज के हाथ में हार को, और उसकी विनीत मुद्रा को देखकर कुश को दया आगई, और उसने गरुड़ास्त्र का प्रयोग नहीं किया। सज्जन लोग क्षमा चाहने वालों पर क्रोध नहीं करते।

नागों के राजा कुमुद ने त्रिलोक नाथ श्री राम के वंशज कुश को सिर झुकाकर प्रणाम करके निवेदन किया—

मैं जानता हूँ कि आप संसार के उपकार के लिए शरीरधारी विष्णु के पुत्र रूपी दूसरी मूर्ति हैं। भला मैं आपको अप्रसन्न कैसे कर सकता हूँ? आपके जैत्र आभरण की ओर जब गेंद खेलती हुई मेरी बाला ने कौतूहल से देखा तो अन्तरिक्ष से गिरने वाली ज्योति की तरह सुन्दर पाकर खिलौना समझा और ले लिया। सो यह लीजिए, यह फिर आपके उसी घुटनों तक पहुँचने वाली, धनुष की प्रत्यंचा के निरन्तर खेंचने के चिह्न से सुशोभित, भूमि की रक्षा स्तम्भ

के समान ओजस्विनी और हृष्ट-पुष्ट भुजा की शोभा बढ़ाने वाला बन जाय। मैं आपकी क्षमा के प्रतिकार में अपनी कुमुद्वती नाम की इस छोटी कन्या को आपको भेंट करता हूँ। आशा है, आप अस्वीकार न करेंगे।

इस प्रकार आभरण भेंट करके, अत्यन्त विनय पूर्वक प्रार्थना करने पर राजा ने कुमुद्वती को अपनाना स्वीकार कर लिया। कुमुद ने सब बान्धवों की उपस्थिति में विधि पूर्वक राजा से कुमुद्वती का विवाह कर दिया। उस पुण्य पाणिग्रहण के समय दिग्गजों के दिव्य तूर्य की ध्वनि व्याप्त हो गई, और आश्चर्यजनक मेघों ने सुगन्धित पुष्प बरसाये। रघुवंश और वासुकि की सन्तान के उस गठजोड़े से दोनों ही पक्ष निःशंक हो गये। कुमुद विष्णु के वाहन के प्रहार से निःशंक हो गया और कुश नागों के उत्पात की चिन्ता छोड़कर सुखपूर्वक शासन करने लगा।

१७.

राजा अतिथि

जैसे रात के अन्तिम प्रहर से प्रकाश का जन्म होता है, कुमुद्वती से काकुत्स्थ वंश का बढ़ाने वाला अतिथि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्य उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओं को पवित्र कर देता है, अतिथि ने भी अपने गुणों की गरिमा से पितृवंश और मातृवंश दोनों को पवित्र कर दिया। पिता ने उसे पहले कुल के योग्य शास्त्र तथा शस्त्रविद्या का अध्ययन करवाया, और उसके पश्चात् उसका राजकन्याओं से विवाह कर दिया। अतिथि अपने पिता के समान ही कुलीन, शूर और संयमी था—इस कारण एक होता हुआ भी अपने अनेक होने का अनुभव करने लगा। जब स्वर्ग पर संकट आया, तब इन्द्र के निमन्त्रण पर कुश वहाँ गया, जहाँ उसने दुर्जय नाम के दैत्य को मार दिया, और स्वयं भी दैत्य द्वारा मारा गया। जैसे चन्द्रमा के साथ चाँदनी विलीन हो जाती है, कुमुद्वती ने भी राजा के पश्चात् प्राण छोड़ दिये।

संग्राम के लिये जाते हुए कुश ने आज्ञा दी थी कि यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरे पुत्र अतिथि को राजगद्दी पर बिठा देना। तदनुसार मन्त्रियों ने राजकुमार का राज्याभिषेक कर

दिया। उसके अभिषेक के लिये कुशल कारीगरों द्वारा, ऊँची वेदी से युक्त, चार खम्बों पर खड़ा हुआ नया मण्डप तैयार करवाया गया। वहाँ सुन्दर पीठ पर बिठाकर सोने के घड़ों में लाये गये विविध तीर्थों के जलों द्वारा, मन्त्रियों ने अतिथि का अभिषेक किया। उस समय मधुर और गम्भीर नाद करने वाले तूर्यों की ध्वनि ने संसार को अतिथि के भावी अक्षय कल्याण की सूचना दी। पहले पुरोहित और उनके अनुगामी ब्राह्मणों ने अथर्ववेद के मन्त्रों से अभिषेक किया, जैसे शिव के सिर पर गंगा का प्रवाह धारावाही रूप से अवतीर्ण होता है, अभिषेक की लक्ष्मी मंगल-ध्वनि के साथ उसके मस्तक पर बह गई। उस समय बन्दी लोग ऊँचे स्वर से स्तुति गान गा रहे थे। जैसे वर्षा के जल से बादलों में चमकने वाली बिजली का तेज निखर उठता है, उसी प्रकार तीर्थों के पवित्र जल से अभिषिक्त होने पर अतिथि की ज्योति भी दस गुना होगई।

यज्ञ के अन्त में राजा ने स्नातकों को इतना पर्याप्त दान दिया कि वे अपने-अपने यज्ञों को सुविधा से पूरा कर सकें। प्रसन्न होकर स्नातकों ने उसे जो आशीर्वाद दिया, उसे राजा के पहले से किये हुए शुभ कर्मों ने दूर से ही व्यर्थ करके रोक दिया। अभिषेक की प्रसन्नता से अतिथि ने कैदियों को मुक्त कर दिया, मृत्यु दण्ड वालों का दण्ड माफ़ कर दिया, बैलों पर अधिक बोझ न लादने की आज्ञा दे दी, और यह भी आदेश दिया इस अवसर पर गौओं को न दुहकर उनका सारा दूध बछड़ों को पीने दिया जाय। राजा की आज्ञा से पिंजरों में

बन्द सब शुक आदि पक्षी छोड़ दिये गये।

तब अतिथि राजसी वस्त्र पहिनने के लिये भवन के दूसरे भाग में गया, वहाँ वह हाथी दाँत के ऐसे आसन पर आसीन हुआ जिस पर बहुमूल्य चादर बिछी हुई थी। प्रसाधक लोगों ने पहले जल से हाथ धोये, फिर उसके केशों के अग्रभागों को धूप से सुगन्धित करके वेष-विन्यास की सामग्री लेकर उपस्थित हुए ! उन्होंने मोतियों की लड़ी में पद्मराग मणि को सजा दिया। कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित चन्दन के लेप से शरीर को प्रसाधन को समाप्त करके उस पर गोरोचन द्वारा पत्र-रचना की। उस समय आभूषण माला और हंस के चिन्ह वाले दुकूल को धारण करके वह राज्यश्री-रूपी बहू का वर अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होता था।

जब अतिथि ने राजवेष से सुसज्जित होकर अपनी आकृति दर्पण में देखी तो वह ऐसी तेजस्विनी प्रतीत हुई जैसे सूर्य के उदित हो जाने पर मेरु पर्वत पर कल्पतरु की छाया। इस प्रकार वेषभूषा से सर्वथा तैयार होकर, राजपद के छत्र-चामर आदि चिन्हों का वहन करने वाले राजपुरुषों के साथ वह जयकारी देवसभा के समान सुशोभित राजसभा में प्रविष्ट हुआ। वहाँ जाकर नरेशों के राजमुकटों के संघर्ष से घिसे हुए पादपीठ और वितान से शोभित पितृ-पितामहों के आसन पर आरूढ़ हुआ। वह श्रीवत्स लक्षणों से युक्त उस सभा में इस प्रकार सुशोभित था मानो विष्णु के वक्ष पर कौस्तुभमणि हो। अतिथि विधिपूर्वक युवराज पद पर नियुक्त न होकर भी बाल्यावस्था में ही

सम्राट् पद को प्राप्त हो गया। मानो दूज का चाँद अर्धचन्द्र हुए बिना ही पूर्ण चन्द्र बन गया।

अतिथि का मुखड़ा सदा प्रसन्न रहता था, वह बात करता था तो मुस्कराकर। प्रजाजनों के विश्वास की साक्षात् मूर्ति के सदृश था। जब ऐरावत के समान भव्य हाथी पर आरूढ़ होकर उसने ध्वजाओं और तोरणों से सजी हुई अयोध्यापुरी में भ्रमण किया, तब वह स्वर्गपुरी के समान दिखाई देती थी।

छत्र केवल अतिथि के सिर पर छाया हुआ था, परन्तु उससे सारी प्रजा के मन में पुराने राजाओं के वियोग से उत्पन्न हुई सारी गर्मी दूर हो गई।

अतिथि रूप, वीरता और दूरदर्शिता आदि गुणों में रघुकुल के सर्वथा अनुरूप था। अभिषेक जल से गीली वेदी भी अभी सूखने न पाई थी कि उसका दुःसह प्रताप समुद्र तट के अन्त तक पहुँच गया। वसिष्ठ की नीति और धनुर्धारी अतिथि के तीर—दोनों की सम्मिलित शक्ति के लिये कुछ भी असाध्य नहीं था। दण्ड शास्त्र के जानने वाले अधिकारियों की सहायता से अतिथि शत्रुओं के अभियोगों का निर्णय स्वयं करता था। उत्तम कार्य करने वाले भृत्यों के प्रति चेहरे की मुद्रा से प्रसन्नता प्रकट करके वह उन्हें अभीष्ट पारितोषिक देता था। कुशरूपी श्रावण मास ने जिन प्रजारूपी नदियों को बढ़ा दिया था। अतिथिरूपी भाद्रपद मास ने अपनी प्रजा वत्सलता से उनमें बाढ़-सी ला दी। वह जो बात कहता था, वह कभी मिथ्या नहीं होती थी। जो

दे देता था, उसे वापिस नहीं लेता था। हाँ, एक नियम का भंग करता था कि शत्रुओं को उखाड़कर फिर उसी देश में लगा देता था। जवानी, रूप और ऐश्वर्य—तीनों में से एक भी हो तो मद उत्पन्न करने के लिये काफी है। उसमें तीनों थे, फिर भी उसके मन में अभिमान नहीं था। इस प्रकार प्रजा के प्रेम से सचित वह नया वृक्ष भी पुराने वृक्षों की भाँति दृढ़मूल हो गया। बाहर के समस्त शत्रुओं को जीतने से पूर्व उसने अन्दर के काम, क्रोध आदि सब शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली। जैसे पत्थर पर पड़ी हुई स्वर्ण की रेखा अमिट होती है, वैसे ही उसके पास आकर चँचला लक्ष्मी भी स्थिर हो गई थी। केवल नीति कायरता का चिन्ह है, और केवल शौर्य पशुवृत्ति का सूचक है, अतः कार्य-सिद्धि के लिये अतिथि दोनों का ही उपयोग करता था। जैसे मेघों से शून्य आकाश में सब कुछ सूर्य की रश्मियों के सामने रहता है, वैसे ही उसके ज्ञान से दूर कुछ नहीं था। शास्त्रों और गुरुओं के आदेश के अनुसार, वह दिन और रात का निश्चित समय-विभाग बनाकर उसके अनुसार कार्य करता था—उसमें विकल्प नहीं होने देता था। वह मन्त्रियों से प्रतिदिन मन्त्रणा करता था, परन्तु भेद सुरक्षित होने के कारण उसकी मन्त्रणा गुप्त ही रहती थी। मित्रों और शत्रुओं में उसके दूत ऐसे प्रच्छन्न रूप में घूमते थे कि वे एक-दूसरे को भी नहीं जानते थे। उनके कारण वह सोता हुआ भी जगता था। वह शत्रुओं के देशों पर आक्रमण करके उन्हें जीत लेता था, तो भी अपने देश के दुर्गों को निर्बल नहीं होने

देता था। केसरी हाथियों के झुण्डों का ध्वंस कर देता है, परन्तु स्वयं पर्वत की गुफा में सुरक्षित होकर जो सोता है उसका कारण डर नहीं, अपितु आत्मरक्षा की सामयिक भावना है।

जैसे धान के दाने बालों में रहकर परिपक्व होते हैं, वैसे ही उसकी कल्याणकारिणी योजनायें भी परामर्श और उद्योग की दशा में अत्यन्त गुप्त रहने के कारण तभी प्रकट होती थीं, जब सफल हो जाती थीं। अत्यन्त बढ़कर भी वह मार्गभ्रष्ट नहीं होता था। ज्वारभाटे के समय भी समुद्र का जल नदी के मुखों से ही बाहर निकलता है—तट की मर्यादा को नहीं तोड़ता। यद्यपि उसमें प्रजा में उत्पन्न हुए असन्तोष को दबाने की पर्याप्त शक्ति थी, तो भी वह असन्तोष उत्पन्न करने वाले कार्यों से बचता था। रोग का इलाज करने की अपेक्षा रोग को रोकना उचित समझता था। वह धर्म, अर्थ और काम तीनों को परस्पर एक-दूसरे का सहायक बनाकर निष्काम भाव से उनका प्रयोग करता था। यदि मित्र निर्बल रहें तो कुछ भला नहीं कर सकते, और यदि अत्यन्त प्रबल हो जाएँ तो विरोधी बन जाते हैं। इस कारण वह मित्रों को मध्यम दशा में रखता था। उसके राज्य में महिलायें तथा व्यापारी जैसे रक्षणीय व्यक्ति भी नदियों में बिहार करते थे, बगियों में, वनों में घूमते थे। वे वाटिकाओं में और पहाड़ों में ऐसे विचरण करते थे, जैसे घरों में। सब लोग आततायियों से निश्चिन्त होकर अपने-अपने कार्यों में लगे रहते थे। वह पृथ्वी की रक्षा करता था, और उसके

बदले में पृथ्वी उसे भरपूर पारितोषिक देती थी। वह खानों से रत्न, खेती से अन्न और जंगलों से हाथी देती थी।

चन्द्र बढ़कर क्षीण हो जाता है, समुद्र भी चढ़कर उतर जाता है, परन्तु वह जो एक बार बढ़ने लगा तो अपने शासन-काल में उतार पर नहीं आया। समुद्र से जल पाकर बादलों में पानी बरसाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार उसके दिये हुए दान से समृद्ध होकर विद्वान् और दरिद्र लोग दानी बन गये थे। मुँह पर की गई स्तुति से अतिथि लज्जित होता था, और स्तोता को बुरा समझता था, तो भी उसका यश निरन्तर बढ़ता ही जाता था। साधारण रूप में अन्य देश पर आक्रमण करना निन्दा के योग्य है,परन्तु क्योंकि उसने अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिये दिग्विजय किया था, अतः वह धर्मानुकूल ही था। इसप्रकार शास्त्रों द्वारा विधि से अश्वमेध यज्ञ करके, कोश और सैन्य की शक्ति के कारण उसने देवताओं के राजा इन्द्र के समान राजाधिराज पदवी को प्राप्त कर लिया। दूर से दूर देश के रहने वाले राजाओं ने सम्राट् अतिथि के भेजे हुए आज्ञापत्रों को सुनने के समय अपने राज्य-छत्रों को हटाकर इतनी दक्षिणा दी कि उसे जनता कुबेर के समान मानने लगी।

१८.

अतिथि के वंशज

अतिथि का निषिध देश की राजकन्या से विवाह हुआ। उससे जो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ उसका नाम निषिध ही रखा गया। जैसे समय पर अच्छी वृष्टि हो जाने के कारण अन्न की सफल फसल की आशा से जीवलोक आनन्द विभोर हो जाता है, वैसे ही बलिष्ठ उत्तराधिकारी के जन्म के कारण प्रजा के कल्याण की आशा हो जाने से राजा अत्यन्त प्रबल हो गया। चिरकाल तक राज्य के सुखों का उपभोग करके, अतिथि ने निषिध को गद्दी पर बिठा दिया, और स्वयं अपने श्रेष्ठ कर्मों से प्राप्त किये स्वर्गलोक को प्रस्थान किया। शतपत्र के समान आँखों वाले, कुश के पौत्र, वीर निषिध ने बहुत काल तक समुद्र मेखला पृथ्वी पर निर्विघ्न शासन किया। तत्पश्चात् उसका पुत्र नल सिंहासन पर बैठा। उसने शत्रुओं का ऐसे मर्दन कर दिया, जैसे गज वन के झुरमुटों को मसल देता है, उसके शुद्ध नभ की भाँति नीले रंग वाला पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम नभ रखा गया। पुत्र के वयस्क होने पर नल ने उत्तर कोसल देश के राज्य का अधिकार उसे दे दिया, और संसार के बन्धन से मुक्ति

पाने के लिये तपोवन को चला गया। नभ के पुत्र का नाम पुण्डरीक रखा गया, और पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा कहलाया। क्षेमधन्वा के पुत्र ने अपने शौर्य आदि गुणों के कारण यशस्वी होकर देवताओं की सेना के नेता बनने की योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसके पुत्र नाम देवानीक था। जैसा वीर पिता था, वैसा ही वीर पुत्र हुआ। दोनों एक-दूसरे के सर्वथा अनुरूप और एक-दूसरे के योग्य थे। क्षेमधन्वा भी अपनी कुलप्रथा के अनुसार चारों वर्णों की रक्षा का भार देवानीक पर डालकर स्वयं मोक्ष के मार्ग पर चला गया। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनग्र रखा गया। क्योंकि वह सारी पृथ्वी का एकछत्र राज्य करने वाला था। अहीनग्र बहुत मधुर प्रकृति का था। शत्रु भी उससे प्रेम करते थे। वह व्यसनियों से बिल्कुल अलग रहता था, इसीलिये उसे कोई भी व्यसन नहीं छु गया था। वह अपने पूर्व पुरुष राम की भाँति मनुष्यों की प्रकृतियों का विशेषज्ञ और चतुर शासक था। वह साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों उपायों का सफल प्रयोग करके चिरकाल तक दिशाओं का शासन करता रहा।

अहीनग्र के परलोक चले जाने पर राज्यलक्ष्मी ने उसके, महानता में पारियात्र पर्वत को जीतने वाले पारियात्र नाम के पुत्र को वर लिया। पारियात्र का पुत्र उदारशील बालक था, उसकी शिला के समान विशाल और दृढ़ छाती थी। वह अपने भयंकर बाणों से शत्रुओं का विनाश कर देता था। उसकी शालीनता इतनी बढ़ी हुई थी वह कि अपनी प्रशंसा सुनकर

लज्जित हो जाता था। अतः उसका 'शिल' नाम गुणों के अनुरूप ही था। पारियात्र ने वयस्क होने पर शिल को युवराज बनाकर सारा राज-काज उसे सौंप दिया, और स्वयं स्वच्छन्द होकर सांसारिक सुखों का उपभोग करने लगा। विषय-भोग में अत्यन्त आसक्ति का परिणाम यह हुआ कि रागरंग से पूरी तरह तृप्त होने से पहले ही पारियात्र की रानी को बढ़ापे ने घेर लिया। शिल के नाभि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अत्यन्त गम्भीर नाभि होने से उसका 'नाभि' नाम रखा गया था, और उसके पिता की भावना थी कि वह सम्पूर्ण राजमण्डल की नाभि अर्थात् केन्द्र हो। नाभि के पुत्र का नाम वज्रणाय रखा गया। वह वज्रधर इन्द्र के समान ओजस्वी हुआ। संग्राम में वज्र के समान उसकी ललकार गूँजती थी, वह हीरकों की खान, पृथ्वी का योग्यपात्र था। वज्रणाय की मृत्यु पर खनिज रत्नों से परिपूर्ण सागरात्मा पृथ्वी उसके शंखण नाम के पुत्र की सेवा में उपस्थित हो गई। शंखण के पीछे उसका पुत्र हरिदक्ष सिंहासन पर बैठा। हरि के पुत्र का नाम विश्वमह रखा गया। विश्वमह के हिरण्यनाभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वृद्धावस्था आने पर पितृऋण से उऋण हुए विश्वमह ने आजानुबाहु वीर पुत्र हिरण्यनाभ को राज्य का अधिकार दे दिया और स्वयं वल्कल धारण करके तपोवन में चला गया।

हिरण्यनाभ के शान्त प्रकृति और सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका 'कौसल्य' नाम रखा गया। गुणों द्वारा सारे ब्रह्माण्ड में यश फैलाकर कौसल्य ने सिंहासन पर ब्रह्मिष्ठ

नाम के पुत्र को बिठाकर स्वयं ब्रह्मधाम की यात्रा की। कुल शिरोमणि ब्रह्मिष्ठ के उत्तम शासन-काल में सुखी प्रजायें आँखों से आनन्द के आंसू बरसाती थीं। गुरुओं की सेवा करने वाले, विष्णु के सदृश तेजस्वी पुत्र नाम के आत्मज को प्राप्त करके राजा ब्रह्मिष्ठ सन्तान वालों में अत्यन्त आदरणीय बन गया। पुत्र के प्रजा की रक्षा के योग्य होने पर वंश की स्थिति से निश्चिन्त होकर, वह इन्द्र का मित्र अपने शुभ कर्मों से स्वर्ग को सिधार गया। पुत्र के यहां पौष पूर्णमासी के दिन पुष्य नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, पुष्प के शासन योग्य होने पर पुत्र महर्षि जैमिनी का शिष्य बन योग-साधना में निरत होकर और मोक्ष का अधिकारी बन गया। पुष्प के ध्रुवसन्धि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र सुदर्शन अभी बच्चा ही था कि ध्रुवसन्धि शिकार खेलने के समय शेर द्वारा मारा गया। पिता के अकस्मात् मर जाने पर अमात्य लोगों ने प्रजा को अनाथता से बचाने के लिए बालक सुदर्शन को ही साकेत का स्वामी घोषित कर दिया। लोगों ने उस बालक को भी मुकट धारण करने के कारण पिता के समान ही तेजस्वी होने वाला राजा मानकर प्रणाम किया। हाथी के बच्चे के समान छोटा-सा बादल का टुकड़ा पुरवा हवा के संयोग से शीघ्र ही दिशाओं में व्याप्त हो जाता है। वह केवल छैः वर्ष का था, उसे हाथी पर आरूढ़ होकर राजमार्ग पर जाते हुए देखकर प्रजाओं ने उसका ध्रुवसन्धि के सदृश ही आदर किया। बालक के कारण वह पूरे सिंहासन को नहीं भर सकता था, परन्तु उसके सुनहरे तेज-मण्डल से सिंहासन भरा हुआ प्रतीत होता था। उसके

पांव सिंहासन की पादपीठि को नहीं छूते थे, तो भी अन्य नरेशों ने उस रघुवंश के अंकुर के सामने अपने उन्नत मुकुट झुकाकर प्रणाम किया। नीलमणि छोटा हो तो भी वह मणि ही कहलाता है। सुदर्शन की आयु कम थी, तो भी उसमें महाराज पद का प्रयोग उपयुक्त ही प्रतीत होता था। अभी उसके कपोलों पर काकपक्ष झूम रहे थे, परन्तु उसकी आज्ञाओं का पालन समुद्र की वेलाओं तक अबाधित रूप से होता था। अभी उसने पूरी तरह अक्षरों का लिखना भी नहीं सीखा था कि विद्वान् गुरुओं की कृपा से दण्डनीति का सांगोपांग प्रयोग जान गया था। पूर्व पुरुषों के प्रताप और उसके अपनी आसाधारण तेजस्विता के कारण तलवार की मूठ पर हाथ रखे बिना ही उसकी भुजायें पृथ्वी की रक्षा करती थीं। समय के साथ-साथ केवल सुदर्शन का शरीर ही नहीं, रघु के वंशजों के योग्य गुण भी पूर्णता को प्राप्त होते गए। पूर्वजन्म के संस्कारों की सहायता से उसने गुरुओं से धर्म-अर्थ और काम तीनों के लिए उपयुक्त वार्ता, दण्डनीति और अन्वीक्षकी, इन तीनों विद्याओं को और राज्य की प्रजाओं को अनायास ही वंश में कर लिया। शरीर भर आया, और वह शास्त्र तथा शस्त्रास्त्र विद्या में प्रवीण हो गया। इस प्रकार उसमें लक्ष्मी और पृथ्वी दोनों सपत्नी भाव रखती हुई भी अनुकूलता से निवास करने लगीं।

१६.

पतन की ओर

वृद्धावस्था आने पर राजा सुदर्शन ने अपने पुत्र अग्निवर्ण को राज्यगद्दी पर बिठा दिया, और स्वयं तपस्या करने के लिये मैथिलारण्य को चला गया। वहाँ तीर्थ के जल में स्नान, तथा झोंपड़ी में बनी हुई कुशा की शय्या पर विश्राम करके उसने महल और बावड़ी को सर्वथा भुला दिया, और फल की इच्छा त्यागकर तप करने लगा। अग्निवर्ण को राज्य के भलीप्रकार से चलाने में विशेष कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि उसके शत्रुजयी पिता ने पृथ्वी का शासन भविष्य की सुरक्षा को लक्ष्य बनाकर ही किया था, केवल शौक पूरा करने के लिये नहीं। राज्य की रक्षा से निश्चिन्त होकर वह विषय-भोग में प्रवृत्त होगया। स्त्रियों के साथ उत्सवों और राग-रंग का ऐसा तांता बँधा कि प्रत्येक उत्सव अपने से पहले उत्सव पर बाज़ी मारने लगा। इन्द्रिय सुखों को एक क्षण के लिये त्यागना भी उसे दूभर होने लगा। महलों में इतना निरत रहने लगा कि दर्शन के लिये उत्सुक प्रजा जनों को दर्शन तक देना बन्द कर दिया। जब कभी वृद्ध मन्त्रियों के बल देने से प्रजा को दिखाई देता भी था तो केवल

झरोखे से चरण सामने कर देता था, चेहरा परोक्ष ही रहता था। प्रजाजन नखों की ज्योति से रंगे हुए, सूर्य की किरणों से विकसित कमलों के सदृश शोभायमान चरणों को प्रणाम करके ही कृतकृत्य हो जाते थे।

उसकी विलासिता दिनों-दिन बढ़ती गई। सुरा के दौर लम्बे और गहरे होते गये। स्त्रियाँ उसके मुँह से लगा हुआ मधु पीना पसन्द करती थीं, और वह उनके होठों से सुरा के पान में आनन्द मानता था। मधुर स्वर वाली वीणा और गायिका उसकी दिन रात की संगिनी बन गई। नृत्य के परिश्रम से नर्तकी के मुँह पर जो पसीना आता था, उसके स्पर्श से सुगन्धित वायु को सूंघकर वह मानता था कि यह सुख देवताओं को भी दुर्लभ है! वह गायिकाओं और नर्तकियों में इतना मग्न रहने लगा कि रानियों को उसे अपने पास ले जाने के लिये "आज यह उत्सव है" "आज यह विधि पूर्ण करनी है" इस प्रकार के बहाने बनाने पड़ते थे। धीरे-धीरे उसकी गिरावट इतनी बढ़ गई कि वह दासियों से भी सम्भोग करने लगा। उसकी बुद्धि इतनी विचलित होगई कि एक स्त्री से बात करते हुए दूसरी का नाम ले देता था। तब वह स्त्री कहती थी कि जैसे तुमने मुझे उसका नाम दिया है, वैसे ही उसका भाग्य भी दे दो। वह सारी रात संभोग में व्यतीत करता था, और दिन में सोता था। इसप्रकार वह चन्द्रकिरणों से विकसित होने वाले और सूर्य के प्रकाश में मुरझाने वाले समुदाय का अनुकरण करता था। एकान्त में नर्तकियों से नृत्य की आंगिक, सात्विक और संगीत सम्बन्धी शिक्षाओं को ग्रहण करके, वह मित्र-

मण्डली में बैठकर बड़े-बड़े उस्तादों से टक्कर लेता था। बरसात के मौसम में कृत्रिम पर्वत बनाकर, और उन्हें मयूरों से सजाकर, बरसाती फूलों की मालाओं से सजा हुआ वह विलासी विहार करता था। अन्य सब ऋतुओं में, उनके अनुरूप रचनायें करके वह काम वासनाओं की तृप्ति में दिन और रात व्यतीत करने लगा और राज्य के सब कार्यों को तिलांजलि देकर, केवल इन्द्रिय-सुखों में लीन हो गया। केश-विन्यास में उसने इतनी कुशलता प्राप्त करली थी कि उसकी मालाओं आदि की सजावट देखकर ही ऋतुओं का अनुमान लगाया जा सकता था।

राघवों के पराक्रम का इतना आतंक जमा हुआ था कि यद्यपि अग्निवर्ण विषय-भोगों में रत रहता था, तो भी बाह्य-शत्रु साकेत की ओर आँख न उठा सके, परन्तु अत्यन्त उपभोग से उत्पन्न होने वाला क्षय रोग अन्दर ही अन्दर उसे ऐसे खाने लगा, जैसे दक्ष का शाप चन्द्रमा को क्षीण कर देता है। वह वैद्यों द्वारा निवारण करने पर भी सुरा और नारी के अति सेवन को न छोड़ सका। इन्द्रियाँ जब विषय सुखों के पीछे भागने लगती हैं, तब उनका रोकना अत्यन्त कठिन हो जाता है। मुँह का रंग पीला पड़ गया, आभूषण कम हो गये, सहारा लेकर चलने की आवश्यकता अनुभव होने लगी, और कण्ठस्वर क्षीण हो गया। राजयक्ष्मा ने अग्निवर्ण की ऐसी दशा करदी जैसी कामातुर अवस्था में कामी लोगों की होती है। उस क्षय रोगी राजा के कारण रघु के तेजस्वी कुल की अवस्था डूबते हुए चन्द्रमा से युक्त आकाश, गर्मी से सूखे हुए पंकशेष तालाब

और बुझते हुए दीपक-सी होगई। जब राजा के दर्शन न होने से प्रजा के हृदयों में तरह-तरह की आशंकायें उत्पन्न होने लगीं, तब सन्तोष देने के लिये मन्त्री यह उत्तर देने लगे कि राजा पुत्रलाभ के लिये जप आदि साधन कर रहा है। एक ओर रोग का प्रकोप, और दूसरी ओर चिन्ता कि अनेक रानियों के होते भी पितृऋण से मुक्त कराने वाला कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। वैद्यों के अनेक यत्नों को लांघकर अग्निवर्ण मर गया। प्रजा में क्षोभ न हो, इस विचार से मन्त्रियों ने अन्त्येष्टि की विधि जाननेवाले पुरोहितों से घर के उपवन में ही उसकी अन्तिमक्रिया करा दी।

उसके पश्चात् देश के प्रमुख पौरजनों से परामर्श करके मन्त्रियों ने एकमत हो गर्भ के शुभ चिन्हों से युक्त रानी को राजगद्दी पर बिठा दिया। पति के वियोग से दुःखी होकर रानी ने जो गर्म आँसू बहाये, गर्भगत बच्चे का पहला स्नान उनसे ही हुआ, तदनन्तर अभिषेक के शीतल जलों से हुआ। बोये हुए बीजों को जैसे पृथ्वी तब तक सुरक्षित दशा में अपने गर्भ में रखती है, जब तक अंकुर उत्पन्न न हों, वैसे ही स्वर्ण के सिंहासन पर विराजमान रानी राज्य के उत्तराधिकारी की गर्भ में रक्षा करती हुई, मन्त्रियों की सहायता से भलीप्रकार राज्य का शासन करती रही।